ISSN : 2583-9411 (Online)

शुभोदय

अन्तरराष्ट्रीय ई-साहित्यिक पत्रिका

शरद अंक - 2023

VOLUME : 02 | ISSUE : 02

प्रस्तुति

शुभम्

साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजी.)

गुलावठी (बुलन्दशहर) उ.प्र. भारत

शुभोदय

ई-साहित्यिक पत्रिका
ईमेल: shubhodayashubham@gmail.com

शरद अंक - 2023

ISSN: 2583-9411(Online)
Volume:02 * Issue: 02

संरक्षक
डॉ. कमल किशोर गोयनका
पूर्व उपाध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
भारत सरकार

प्रोफेसर महावीर सरन जैन
पूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
भारत सरकार

प्रधान संपादक
डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
मोबाइल - 9837573250

संपादक
डॉ. ईश्वर सिंह
मोबाइल - 9899137354

सह संपादक
मुकेश निर्विकार
संदीप कुमार सिंह
डॉ. नीलम गर्ग
डॉ. ब्रजराज यादव
डॉ. राजकुमार वर्मा (तकनीकी)

प्रस्तुति
'शुभम्'
साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजीकृत)
गुलावठी (बुलन्दशहर), उत्तर प्रदेश, भारत

डिज़ाइन
त्रिगुण कुमार झा
मो. : 9810679648

'शुभोदय' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं, उनसे 'संपादक मंडल' की सहमति होना अनिवार्य नहीं

'शुभोदय' (शरद 2023)

सरस्वती वंदना	3
प्रधान संपादक की कलम से	6
संपादक की कलम से	7
साक्षात्कार	8
लेख	
राजीव रंजन गिरि	12
विनय शुक्ल	14
डॉ. भावना कुँवर	15
डॉ. रजनी सिंह	17
निर्देश निधि	19
डॉ. इंद्र कुमार शर्मा 'आदित्य'	20
अवधेश सिंह	22
जयश्री बिर्मी	24
गीता रस्तोगी 'गीतांजलि'	25
हास्य व्यंग्य	
डॉ. टी महादेव राव	27
सुरेश चंद्र शर्मा	29
कहानी / लघु कथा	
सुधा गोयल	31
योगेंद्र कुमार सक्सेना	33
पूनम सुभाष	35
डॉ. प्रभाकर जोशी	37
संदीप कुमार सिंह	38
डॉ. स्वदेश चरौरा	39
आसिमा भट्ट	41
विष्णु सक्सेना	42
कविता/गीत/ग़ज़ल	
प्रो. महावीर सरन जैन	43
बी के वर्मा शैदी	44
अनिमेष शर्मा 'आतिश'	45
अरविंद कुमार 'विदेह'	46
केशव चंद्र कल्पांत	47
वंदना कुँवर रायजादा	48
प्रगीत कुँअर	49
अरविंद पाराशर	50
अलका शर्मा	51
डॉ. ममता शर्मा	52
मृत्युंजय साधक	53
डॉ. अंजु सुमन साधक	54
एम एम खान	55
मुकेश निर्विकार	56
डॉ. जितेंद्र कुमार	57
डॉ. बिंदु कर्णवाल	58
ऋषभ शुक्ला	59
डॉ. नीलम गर्ग	60
साहित्यिक हलचल / पुस्तक समीक्षा	
डॉ. कमल किशोर गोयनका	61
डॉ. हर्षदान	63
डॉ. मोनू सिंह	65
संजय शुक्ल	68
नियम	70

शुभोदय

वर दे...

वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव,
नव नभ के नव विहग-वृंद को,
नव पर, नव स्वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रधान संपादक की कलम से

.... मौसम खुशगवार हो

'शुभोदय' का शरद अंक 2023 आपके हाथों में है। अब आपका 'शुभोदय' पंजीकृत है। इसका आईएसएसएन है 2583-9411 (ऑनलाइन)। नेशनल साइंस लाइब्रेरी, दिल्ली के प्रति हार्दिक आभार और शुभोदय परिवार को बहुत-बहुत बधाई।

दो वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई यह साहित्यिक यात्रा प्रारंभ में बहुत कठिन लग रही थी लेकिन जैसे-जैसे देश-विदेश के समर्थ कलमकारों और सुधि पाठकों का स्नेहासिक्त मार्गदर्शन मिलता गया वैसे-वैसे ही शुभोदय अंक दर अंक स्वयं को बेहतर बनाने का संकल्प लिए आगे बढ़ता गया ....

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में चमत्कारी विकास ने पढ़ने लिखने की संस्कृति को नया कलेवर प्रदान किया है। विकास के इस अभिनव फलक पर साहित्य की प्रासंगिकता कम नहीं हुई है बल्कि उसको नए-नए आयाम मिल रहे हैं। समय की मांग है, ई-साहित्य। शुभोदय इस दिशा में अभिनव मगर प्रभावी उपक्रम है। समकालीन सरोकारों के स्पंदन अपने अंतस में समेटे हुए इसकी विविध विधात्मक प्रस्तुति लेखन और पाठकों का एक ऐसा पावनधाम है जहां मानवीय मूल्यों के पुष्पों की सुगंध है, सामाजिक-सांस्कृतिक-राष्ट्रीय सुविचारों के चिरागों की रोशनी है और वैश्विक विश्वासों के सौंदर्य की रंगोली है।

अस्तु अधिक न कहकर आप सभी से विनम्र मनुहार करूंगा-

"मित्रो! दुआ करो, मौसम खुशगवार हो;
मुसाफिर को छाया, पेड़ों को फूलों का प्यार मिले।
लहर को किनारा, सागर को मोतियों का श्रृंगार मिले;
चकोर को चांद, रात्रि को विहान का उपहार मिले।"

श्रीमत्कुंज विहारणे नम:

डॉ. देवकीनंदन शर्मा

प्रधान संपादक

संपादक की कलम से

....इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना

'शुभोदय' (शरद अंक वर्ष 2023) के मुखपृष्ठ पर अंकित आईएसएसएन नंबर ने निश्चित रूप से आपका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया होगा। दो वर्ष की यात्रा में यह उपलब्धि एक संपादक के रूप में मुझे बेहद सुखद संकेत दिखाई दे रहा है। अब यह आशा और बलवती हो गयी है कि 'शुभोदय' समाज के प्रति अपने साहित्यिक उत्तदायित्व को निभाने के लिए कमर कस कर पहले से अधिक मजबूती के साथ तैयार हो रहा है। बरबस ही ये पंक्तियाँ जेहन में उभर आई हैं:

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रांत भवन में टिक रहना
किंतु पहुँचना उस मंजिल तक, जिसके आगे राह नहीं है।"

शरद अंक जहाँ एक ओर प्रतिष्ठित साहित्यकार के साक्षात्कार से हमारा साक्षात्कार करा रहा है जिसके द्वारा हमें साहित्य के प्रति एक नई दृष्टि मिलेगी तो वहीं इसकी अनुक्रमणिका में दर्ज देश-विदेश के सुविख्यात साहित्यकारों के नाम इस बात की गवाही दे रहे हैं कि 'शुभोदय' श्रेष्ठ साहित्यकारों की पसंद बन गई है। यह उपलब्धि अपने आप में एक चुनौती भी है।

इस अंक में पाठक परंपरागत रूप से साहित्य की सभी विधाओं का रसास्वादन कर सकेंगे। 'शुभोदय' संपादक मंडल का यह प्रयास है कि आपके हाथों में श्रेष्ठ गुणवत्तापूर्ण सामग्री पहुँचे और साथ ही हम इस दिशा में उत्तरोत्तर बेहतरी करते रहें। आपकी पाठकीय प्रतिक्रिया से हमें यह पता चलता है कि हम अपने प्रयासों में कितना सफल हो रहे हैं। पाठकीय प्रतिक्रियाएं हमारी ऊर्जा का स्रोत हैं।

मैं इस अंक के सभी रचनाकारों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनकी रचनाओं ने हमारी पत्रिका की गरिमा बढ़ाई है। मैं 'शुभोदय' के पाठकों के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हुए उनसे निवेदन करता हूँ कि अपनी प्रतिक्रियाओं से हमारा मार्गदर्शन करते रहें। आप अपना अभिमत हमारे ईमेल या मोबाइल नंबर पर दे सकते हैं जिनका विवरण पत्रिका के पहले पृष्ठ पर दिया गया है।

सादर,

डॉ. ईश्वर सिंह

संपादक

साक्षात्कार

'साहित्य में भारतीय अस्मिता का समावेशन आवश्यक है ..' -*विजय रंजन*

डॉ० ईश्वर सिंह : आप पिछले लगभग 58 वर्षों से साहित्य-लेखन में निरत है। आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है जिनमें से अनेक अति चर्चित रही है। आपकी रचनाएँ देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। 'अवध-अर्चना' पत्रिका से भी आप विगत 28 वर्षों से जुड़े हुए हैं। हिन्दी-साहित्य की गत 75 वर्ष की यात्रा को किस रूप में देखते हैं?

विजय रंजन : हिन्दी एक अगाध सामर्थ्य की भाषा है। इसका साहित्य भी साहित्यिक मूल्यमानों से श्रेष्ठ रहा है इसलिए कि यह मूलतया संस्कृत-साहित्य से और उससे भी बढ़ कर भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित रही है। हिन्दी का निजका भाषिक साहित्यिक बल भी अत्यधिक बलशील है। संभवत इसीलिए विगत के अनेक दशकों में शासकीय, राजकीय, लेखकीय और पाठकीय उपेक्षाओं के बावजूद हिन्दी विविध आयामों में अनवरत आगे बढ़ती जा रही है। आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष में विगत 75 वर्षो की यात्रा को समवेत में देखने पर कहना होगा कि वर्तमान में हिन्दी के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है जिनसे हिन्दी को जूझना होगा। मुझे विश्वास है कि यदि अपने मूल साहित्यिक आदर्शों से विचलित मान नहीं हुई तो हिन्दी भाषा और साहित्य वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय उत्कर्षो के साक्षातीकरण दोनों ही संस्तरों पर विश्व में अपनी पताका फहराएगी।

डॉ० सिंह: आजादी के 75 वर्षों में साहित्य में भाषा शैली और विषयवस्तु की दृष्टि से क्या-क्या बदलाव हुए हैं?

विजय रंजन: परिवर्तन प्रकृति का नियम है। निस्संदेह हिन्दी भाषा एवं साहित्य को भी विगत 75 वर्षों में प्रत्युत: अपने जन्मकाल से अब तक भाषा, शैली, विषयवस्तु ही नहीं और कथानक कथ्य के अनेक आयामों में अनेकानेक परिवर्तन झेलने पड़े हैं। तदपि कह सकते हैं कि प्रसंगत अधिकांश परिवर्तन सकारात्मक रहे है। कविता के क्षेत्र में भी दैनन्दिनि सरोकारों से जुड़ाव वाली हिन्दी गजल, कविबिंब-विधान वाले नवगीत और समकालीन कविता के नाम पर संवेदनापरक कविता के नवीन स्वरूप भी रूपायित हुए है। इस बीच जबकि दोहा विधा पुनर्जीवित होने की दहलीज पर है। खड़ी बोली हिन्दी में गद्य भी 1940-50 ई० के गद्य की अपेक्षा अधिक भाव-प्रवण हुआ है। अनेक नई गद्य विधाएँ यथा जीवनी, सस्मरण, पत्र-विधा आदि भी वाचाल हुई हैं। कतिपय भाषिक अपमिश्रण या छिटपुट सैद्धान्तिक विचलन को अनगिना कर दें तो कह सकते हैं कि हिन्दी विगत के 75 वर्षों में अधिक प्रांजल अधिक सक्षम स्वरूप में उभरी है। इस बीच हिन्दी मात्र भारत की या भारत के हिन्दी प्रदेश की अभिव्यक्ति की भाषा नहीं रही वरन् उससे कहीं आगे जाकर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संस्तरों पर ज्ञान विज्ञान कम्प्यूटर, इन्टरनेट विज्ञापन, व्यापार, सिनेमा, रोजगार आदि की सक्षम भाषा के रूप में सुस्थापित हो गई है। वहीं, हिन्दी-साहित्य ने भी इस बीच विश्व स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। हिन्दी के उपन्यास अब वैश्विक स्तर पर भी पुरस्कृत हो रहे हैं।

इस बीच यद्यपि हिन्दी की वर्तनी व्याकरण आदि को अपदूषित कर हिन्दी को अपदूषित किए जाने का दुष्प्रयास भी गतिमान है, जो चिन्ताजनक है परन्तु इन चिन्ताओं के निराकरण के लिए कोई जो बाइडन कोई सुनक, कोई

पुतिन, कोई जिनपिंग आगे नहीं आएंगे, वरन प्रसंगित अपघातों को हम हिन्दी जन को ही निराकृत करना होगा।

वर्तमान में ऐसे साहित्यिक पुरोधा प्राय नहीं के बराबर दिख रहे हैं, जो सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, भाषिक, साहित्यिक, सांस्कारिक, सांस्कृतिक अपदूषणों का निषेध बलशील रूप-स्वरूप में रूपायित कर सकें, यद्यपि हिन्दी जगत के बहुलांश भारतीय मनोमस्तिष्क वाले कवि, लेखक भीतर-भीतर संदर्भगत अपदूषणों के विरोध में कसमसा रहे हैं। यह भी वर्तमान में हिन्दी जगत की अन्यान्य उपलब्धि के साथ-साथ विगत के 75 वर्षीय परिवर्तन-श्रृंखला में विसंगतियों का एक वस्तुनिष्ठ परिदृश्य है।

डॉ० सिंह: नैतिकता और जीवन-मूल्यों को पोषित करने में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। क्या धीरे-धीरे साहित्य अपने इस सामाजिक दायित्व से विमुख होता हुआ प्रतीत हो रहा है ?

विजय रंजन: निःसन्देह, नैतिकता आदि श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को पोषित करने में साहित्य की विशेषकर हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। परन्तु अनकथ छाद्मिक दुष्चक्रों के व्यावहारिक, सैद्धान्तिक दुष्प्रभाव से वर्तमान में हिन्दी के अधिकांश कवि, लेखक विभ्रमित से दिख रहे हैं। लय-छन्द से सर्वधा विहीन सपाटबयानी वाली कथित समकालीन कविता का प्रसंग हो या बाडबन्दी वाला घृणास्पद लेखन या भारतीयता विहीन, भारतीय आदर्शों से विमुख उच्छृंखल यौनवादी लेखन या लोकप्रिय साहित्य के नाम पर लुगदी साहित्य के विश्वविद्यालय में पाठारम्भ का प्रकरण या साहित्य का राजनीतिकरण आदि इत्यादि. वस्तुतः अधिकांशतया ऐसे सभी उदाहरण नवारूढ़ नवागत कवि-लेखकों को दिग्भ्रमित करने में सक्षम है। उनका दुष्प्रभाव भी वाचाल है। विचारणीय है कि लुगदी साहित्य पढ़ा कर कौन से श्रेष्ठ जीवन-मूल्य आगत पीढ़ी को और सम्पूर्ण समाज को दिए जा सकेंगे ?

डॉ० सिंह : जितनी बड़ी संख्या में आज पुस्तकें प्रकाशित हो रही है उस अनुपात में पाठकों की संख्या नहीं दिखाई देती। इसे आप किस रूप में देखते हैं ?

विजय रंजन: निश्चित रूप से आज पुस्तक-नाम बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रहे हैं। कवि, लेखको की संख्या भी बढ़ रही है लेकिन जहाँ कुछ वर्षों पूर्व तक पुस्तकें प्रथम संस्करण में कम से कम 1000 की संख्या में प्रकाशित की जाती थीं। वही वर्तमान में पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रणेता कवि, लेखक द्वारा क्रय की जाने वाली (प्रत्युत क्रय करके वस्तुत मित्रगण की निशुल्क बांट देने वाली प्रतियों के अतिरिक्त) प्राय 20-50 की संख्या में प्रकाशित हो रही है। अधिकाश प्रकाशक पहली बार में मात्र 50 प्रतियां ही छापते हैं। 20-40 प्रतियाँ सबमिशन में सबमिट करते बाद में अमेजन पिलपकार्ड या वितरकों से आर्डर मिलने पर आवश्यकतानुसार छापते रहते हैं। 50-100 पुस्तकों के प्रकाशन से लेखक-प्रकाशक अपनी-अपनी पगडी में सुनहरी कलगियाँ भले ही विजडित कर लें लेकिन उससे समाज को कोई सारवान सन्देश निर्देश नहीं दिया जा सकता।

पुस्तक-प्रयनशन की इस चिन्तनीय दशा का कारण है पाठकीयता, पाठकीय अभिरुचि, पाठक संख्या और सबसे बढ़कर ग्राहक का गम्भीर अभाव। कवि लेखक, आलोचक तो बढ़े हैं, लेकिन पाठक कम होते जा रहे है और ग्राहक तो नगण्य है। अधिकांश कवि, लेखक किसी दूसरे का लेखन पढ़ना-सुनना नहीं चाहते। कवि-गोष्ठी/विचार गोष्टी तक में वे केवल अपनी रचना सुनाने या व्याख्यान देने ही आते हैं। आज जो लिखा जा रहा है. उसका बहुलांश जीवन-मूल्यों के द्वारा जन-मन को विश्रान्ति और मार्गदर्शन प्रदान के बजाय अभिव्यक्तिवाद, व्यक्तिगत अहम कुण्ठा, जुगुप्सा या उत्तेजना आदि या मात्र सतही मनोरंजन से आग्रस्त होता है। ऐसी पुस्तक को उड़ती निगाह से देख लेने के बाद दूसरी बार पढ़ने या उसे सहेज कर रखने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे लेखन से भी आज पुस्तक-जगत् को गम्भीर क्षति हो रही है।

डॉ० सिंह : पुस्तकों की पठनीयता और प्रासंगिकता पर सोशल मीडिया के प्रभाव पर आपकी टिप्पणी? क्या सोशल

मीडिया और इन्टरनेट पुस्तकों के अस्तित्व के लिए चुनौती प्रस्तुत करते हैं ?

विजय रंजन : सोशल मीडिया या मोबाइल और इन्टरनेट ने पुस्तक-जगत् को विशेषकर कवि, लेखक और बौद्धिक जन की पठन-अभिरुचि को निस्संदेह क्षति पहुँचाई है। एन्ड्रायड मोबाइल ने पुस्तक-पाठन का विनाश-सा कर दिया है। यह कटु सच्चाई है। वर्तमान में पुस्तकों का पाठक संवर्ग विरल-दर- विरल हो गया है और ग्राहक लगभग शून्य।

ज्ञान-प्रदान और ज्ञान-प्रसार में सोशल मीडिया एक सफल सबल उपस्कर है। इस कारण साहित्य के प्रसार-प्रचार में भी यह सबल सहायक सिद्ध हो सकता है। साहित्य जहाँ उत्कृष्ट जीवन-मूल्यों के ज्ञान और उसके संवर्धन का उपस्कर होने से मनसरंजक होता है, वहीं पश्चिम के भौतिकतावाद के दुष्प्रभाव में नेट, मोबाइल एन्ड्रायड को और स्वयं साहित्य को भी मात्र मनोरंजन का उपकरण मान लिया गया है।

मेरा यह सुनिश्चित मत है कि दुनिया के अन्यान्य ज्ञानानुशासन के सापेक्ष साहित्य सर्वाधिक श्रेष्ठ परोन्मुखी, सत्त्वशील, शिवशील, आतशील, शान्तिकामी सर्वतोभद्र का आराधक तथा अक्षर की साधना का सर्वश्रेष्ठ उपादान है। साहित्य ही निश्चित रूप से एकमेव ऐसा ज्ञानानुशासन है जो व्यक्ति के लिए समाज के लिए प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व के लिए अप्रतिम रूप से सार्वहिती, लोकहिती सर्वकल्याणक और सार्वसुन्दर है।

डॉ० सिंह: आज जिस प्रकार का साहित्य-सृजन हो रहा है, उसे आप साहित्य की कसौटी पर कितना खरा पाते हैं ?

विजय रंजन: वर्तमान में जो साहित्य सृजित किया जा रहा है, उसका बहुलांश मैकाले और मार्क्स के सिद्धान्तों के समानुरूप होने से, पश्चिमी भौतिकतावाद से आग्रस्त होने से और यूरोपीय विभ्रांत सैद्धान्तिकी से आच्छादित होने के कारण वस्तुतः भारतीय साहित्यिक मानकों पर 'साहित्य' ही नहीं माना जा सकता, वह मनोरंजनवादी, अहमवादी, कुत्सावादी, कुण्ठावादी और इसी तरह के अन्यान्य वादी, विवादी, वितण्डावादी स्वरूपों में है, वस्तुनिष्ठ साहित्यिक स्वरूप में नहीं है। उनमें श्रेष्ठ सर्वोपयोगी जीवन-मूल्यों का निर्देशन, उच्चतर भावदशा की प्रवहमानता, छन्दांसि यज्ञाः की पावन उदभावना, ऋतशीलता, नयशीलता. शिवशीलता. सत्वशीलता, शान्तिधर्मिता, लोकधर्मिता, लोक-संग्रह, नानृषिकता आदि नहीं के बराबर है।

डॉ० सिंह : आपने राष्ट्रवाद पर भी विपुल साहित्य-सृजन किया है। क्या आप आजादी में अब तक राष्ट्रवाद को संकल्पना में कुछ बदलाव देखते हैं?

विजय रंजन : राष्ट्रवाद पर भारतीय राष्ट्रवाद राष्ट्र की कोई सामयिक आवश्यकता नहीं, अपितु सतत राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकता है। भारतीय राष्ट्रवाद कहीं ऊपर से थोपा हुआ या किन्हीं विषम परिस्थितियों से उत्पन्न प्रत्यय नहीं है। ऋक युग से ही देवी भारती के गुणों से आतृप्त हम भारतीयों के संस्कारों में भारतीय राष्ट्रवाद व्याप्त है। राष्ट्रवाद आज जिस वर्तमान स्वरूप से चर्चा में है, यह 18वीं या व्यावहारिक स्वरूप में 19वीं सदी में पश्चिम के यूरोप (जर्मनी) में आविर्भूत हुआ। इस राष्ट्रवाद में यूरोपीय विचारक मैकियावेली हीगल, हर्डर, मुसालिनी आदि ने राष्ट्र के प्रति राष्ट्रिक के कतिपय कर्त्तव्यों की ओर इंगित किया। उस यूरोपीय राष्ट्रवाद या पाश्चात्य राष्ट्रवाद से हजारों वर्ष पुराना है भारतीय राष्ट्रवाद ।

डॉ० सिंह : रंजन साहब आप अवध-अर्चना पत्रिका के माध्यम से और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पत्रकारिता से भी जुड़े रहे हैं। लोकतंत्र के इस चौथे स्तम्भ की भूमिका के बारे में आपका क्या अभिमत है ?

विजय रंजन: पत्रकारिता भी साहित्य की एक विधा है। अतएव साहित्य की जो वांछाएँ है, उससे इतर नहीं मानी जा सकती पत्रकारिता द्वितीयत. I.I.E.E. (Information. Interpretation, Entertainment and Education) भी पत्रकारिता के सर्वमान्य अधिलक्ष्य है। स्वाधीनता-संग्राम के युग में पत्रकारिता विशेषकर हिन्दी पत्रकारिता की मुख्यधारा राष्ट्रवादी रही थी। बालमुकुन्द गुप्त] गणेश शंकर विद्यार्थी हो या पराड़कर, नन्दकिशोर त्रिखा आदि ये सभी

पत्रकारिता के मूल अधिलक्ष्यों के साथ-साथ भारतीयतावादी, राष्ट्रीयतावादी पत्रकारिता के ही परचमधारी पुरोधा रहे थे ये भाषायी अस्मिता आदि के प्रति भी सचेत थे लेकिन वर्तमान में पत्रकारिता जगत की दशा और दिशा प्रचार-प्रसार की दृष्टि से भले ही सुखद दिख रही हो, उसमें भारतीयता, राष्ट्रवादिता लोकसंग्रह, लोकहितवादिता, नैतिकता आदि आवश्यक कल्याणक मूल्यों का अभाव ही दृश्यमान है।

हिन्दी पत्रकारिता को शासन का चतुर्थ स्तम्भ कहा जाता है इसलिए कि लोकतंत्र की सुरक्षा, लोकहित की संरक्षा आदि की दिशा में उसका योगदान महती महत्त्व का हो सकता है। दुर्दैच से वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता लोकसंग्रही मानकों से परे भारतीयता की भावना से विषय और वैयक्तिक लाभ-लोभ से आभरित और राजनैतिक राग-द्वेष से आग्रस्त हो गई है। उसके लिए लोकहितवादी नैतिकता सह नैतिकतावादी लोकहित की भाषायी अस्मिता की और भारतीय संस्कृति की संरक्षा वरन संक्षेप में कहूं तो भारतीयता राष्ट्रवादिता सदृश प्रत्यय गौण या उपेक्ष्य योग्य हो गए हैं। ऐसी अवस्थिति को भी समुचित रूप में सुधारा जाना चाहिए।

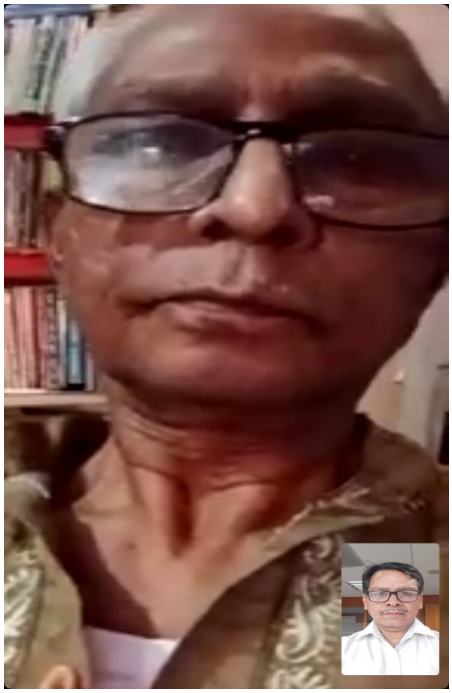

डॉ० सिंह: 'शुभोदय' के पाठकों और नवांकुर साहित्यकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

विजय रंजन: देखिए, मैं जीवन के 75वे वर्ष के पायदान पर पहुँचने के बावजूद विगत लगभग 58 वर्षों से अक्षराराधना में निरत होने के बावजूद स्वयं को साहित्य के ककहरा का शिक्षार्थी ही मानता हूँ। इसीलिए अद्यतन भारतीय राष्ट्रवाद का क ख ग साहित्य का क ख ग नाम वाली पुस्तकें ही रच रहा हूँ। इस तरह कोई संदेश-निर्देश देने की अवस्थिति में स्वयं को नहीं पाता मैं।

तदपि वरिष्ठ होने के नाते अपना नहीं, अपितु अति मान्य मनीषी साहित्याचार्य सफल राजनेता और प्रखर अध्येता आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का संदेश नवांकुरों को अग्रसारित करना चाहूँगा जो उन्हें उनके पिताश्री ने दिया था। वह सन्देश है- "बोलो कम, लिखो अधिक, पढ़ो बहुत अधिक।" इस सन्देश में नवागतों के लिए और शुभोदय के पाठकों के लिए भी अपनी ओर से इतना और जोड़ना चाहूंगा कि वे अपने लेखन में भारतीयता, राष्ट्रवादिता भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता. हिन्दी की भाषायी अस्मिता आदि के संरक्षण, लोकसंग्रह आदि दृष्टिकोणों का समावेशन अवश्य करे, तभी उनका लेखन राष्ट्र, समाज और सम्पूर्ण मानवता के हितवाला कालजयी लेखन होगा।

***

राजीव रंजन गिरि
राजधानी कॉलेज-दिल्ली विश्वविद्यालय

आजादी का आगमन और गाँधी की विदाई

सन सैंतालिस के 15 अगस्त से कुछ माह पूर्व ही 'नियति से साक्षात्कार' वाले इस दिवस का अहसास होने लगा था। इसकी निश्चितता की ख़ुशी को कुछ खलल थी, जो खाये जा रही थी। अरसे संघर्षों के बाद ब्रिटिश दासता समाप्त हो रही थी। ऐसे वक़्त में ख़ुशी के जिस माहौल की कल्पना की जा सकती है, वह निरापद नहीं दिखती। वजह, आज़ादी की ख़ुशी के साथ बंटवारे का ग़म। नफ़रत की आग से यह ग़म जलकर राख नहीं बन रही थी। इस आग ने तो सुलगा रखा था ताकि ग़म की तपिश कम न हो जाए। लोग इसकी आँच में झुलसते-जलते रहें।

सत्ता हस्तांतरण की बयार थोड़ी राहत पहुंचा रही थी कुछ लोगों को; पर इनमें गांधी शामिल नहीं थे। जीवन का अठहत्तर बसन्त और कई प्रयोगों का सकर्मक साक्षी रहा उनका मन-मस्तिष्क पहले से ज्यादा अनुभव-ज्ञान से लैस और मजबूत था, पर काया कमजोर हो गयी थी। मन की दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ गांधी का शरीर कदम-ताल मिलाने में हांफने लगा था। अपने जुनूनी स्वभाव और सामने आई पहाड़ सी चुनौती के कारण वे इसे स्वीकार नहीं कर सकते थे। तभी तो अगस्त 1947 से कई माह पहले से जनवरी 1948 तक वे लगातार यात्रा में थे। जहां भी खूरेंजी होती गांधी जाते। लोगों के दुःख-दर्द बांटते। प्रार्थना और संदेशों से नफ़रत की ज्वाला बुझाने का प्रयास करते। भविष्य में अपनापन कायम रहे इसकी राह सुझाते। कट्टरता से दूर इंसानियत का पथ दिखाने में प्राण-पण से जुटे थे।

जितनी जगहों से उनको बुलावा था, आहत लोगों को उनकी कामना थी; भौतिक रूप से सब जगहों पर पहुंचने में अक्षम थे। एक स्थान पर रहकर भी दूसरी जगहों पर अमन के लिए सन्देश भेजते और दूत भी। परिस्थितियां विकराल और जटिल होती जा रही थीं । अखंड भारत का व्यास भी बड़ा था। करांची का असर बिहार में दिखता तो नोआखाली का कोलकाता में। हर तरफ आग धधक रही थी। गांधी से शिकायत सबको थी। आग लगानेवालों और इसमें जलनेवालों के अलावा इस आग में हाथ सेंकने वालों को भी; क्योंकि उनसे उम्मीदें भी सभी को थीं। कहीं हिंदुओं का कत्लेआम हो रहा हो या मुसलमानों अथवा सिक्खों का, गांधी के लिए अपनी काया के अंग के जलने सरीखा था। इसे अपनी असफलता मान रहे थे गांधी। अपने स्वप्नों का यह यथार्थ उन्हें व्यथित करता था। गोया गांधी वामन की तरह दो-तीन कदमों में नाप लेना चाहते थे अखंड हिंदुस्तान। पर नाप कहाँ पा रहे रहे थे! नाप कहां पाए! यही उनकी नियति थी! त्रासद नियति!

पन्द्रह अगस्त की आधी रात को जश्न में डूबी दिल्ली हिंदुस्तान का मुस्तक़बिल तय कर रही थी, तब पिछले तीन दशकों से स्वाधीनता संघर्ष की नीति, नियत और नेतृत्व तय करने वाले महात्मा गांधी भावी राष्ट्र के शिल्पकारों को आशीर्वाद देने के लिए न सिर्फ जश्न- स्थल पर गैरमौजूद थे बल्कि दिल्ली की सरहद से मीलों दूर कलकत्ता के 'हैदरी महल' में टिके थे। वे नोआखाली की यात्रा पर निकले थे, जहाँ अल्पसंख्यक हिंदुओं का भीषण कत्लेआम हुआ था। दो-तीन दिनों के लिए उन्हें कोलकाता रुकना पड़ा। यहां अल्पसंख्यक मुसलमान सहमे हुए थे। नोआखाली की ज्वाला रोकने की खातिर गांधी को कोलकाता की आग शांत करना आवश्यक था। वे सोच रहे थे कि कोलकाता में मुसलमानों को असुरक्षित छोड़ किस मुंह से नोआखाली में हिंदुओं की रक्षा की गुहार लगा पाएंगे! गांधी यहां अल्पसंख्यको की हिफाजत अपना धर्म मान रहे थे, और इससे अर्जित कर रहे थे वह नैतिक ताकत जिससे नोआखाली में अल्पसंख्यकों की जान के साथ हक और हुकूक की रक्षा कर सकते थे। कोलकाता में रहने के लिए गांधी ने ऐसे स्थान की कामना की, जो तबाही का मंजर खुद बयान करता हो! एक मुस्लिम बेवा का जीर्ण 'हैदरी महल' इस लिहाज से उपयुक्त था। इस इलाके में हिन्दू बहुसंख्यक थे। पास में कमजोर तबके के मुसलमानों की बस्ती मियां बागान थी। मियां बगान में लूट पाट और आगजनी का आलम यह था कि कोई रहवासी अपना दुखड़ा सुनाने के लिए भी मौजूद नहीं था।

इसी हैदरी महल को गांधी ने अपना बनाया, शर्त यह भी थी कि सुहरावर्दी भी यहां साथ रहें। वही सुहरावर्दी जिसने साल भर पहले 'सीधी कार्रवाई' से सैकडों हिंदुओं को मौत की नींद सुलाया था और हजारों को बेघर बनाया था। हिंदुओ से नफरत के लिए कुख्यात सुहारावर्दी आज अपना

अपराध कुबूल कर अमन के लिए आया था।

गांधी की एक और शर्त थी: कलकत्ता के मुस्लिम लीग से जुड़े कट्टर नेता नोआखाली के अपने 'लोगों' को तार भेजकर वहां के हिंदुओं की रक्षा सुनिश्चित करें; अपने कार्यकर्ताओं को भी भेज अमन के पैदावार की जमीन तैयार करें। गांधी की शर्तें मंजूर हुईं। एक संगठन से जुड़े युवकों की नाराजगी बनी रही। ये लोग गांधी को महज मुसलमानों का हितैषी मान रहे थे; ऐसे लोग गांधी को 'हिंदुओं का शत्रु' बताते थे। उस शख़्स को जो जन्म, संस्कार, जीवनशैली, आस्था और विश्वास से पूरी तरह हिन्दू था।

गांधी पन्द्रह अगस्त को 'महान घटना' मानते थे और अपने लोगों से 'उपवास, प्रार्थना और प्रायश्चित' करके इस दिन का स्वागत करने का इसरार करते थे। उन्होंने इस महान दिन का स्वागत ऐसे ही किया भी।

कलकत्ता में गांधी सफल साबित हुए। अमन का माहौल बनने लगा। महात्मा के आदर्श का असर सैन्य शक्ति से प्रभावकारी दिखा। तभी तो आखिरी वायसराय और पहले गवर्नर जनरल माउंटबेटन ने तार से बधाई भेजा: पंजाब में हमारे पास पचपन हजार सैनिक हैं, पर दंगें काबू में नहीं आ रहे, बंगाल में हमारी सेना में केवल एक व्यक्ति है और वहां पूरी तरह शांति है।

गांधी नोआखाली की यात्रा से पहले कुछ दिन के लिए कलकत्ता रुके थे, पर रहना पड़ा महीना भर। कलकत्ता जो बारूद की ढेर पर टिका था और चिंगारी की प्रतीक्षा में था, गांधी को रोके रहा। गांधी ने बारूद को ठंडा किया, चिंगारी भी बुझा दी थी। साल भर पहले के सुहरावर्दी की, अब नए आदर्श की, प्रतिज्ञा सुन लोग आश्चर्य कर रहे थे। दंगाई हिन्दू नौजवान भी प्रायश्चित कर रहे थे।

गांधी को दिल्ली बुला रही थी। जश्न का माहौल काफूर हो चुका था। कलकत्ते के गांधी से दिल्ली आशान्वित थी। दिल्ली महात्मा की प्रतीक्षा कर रही थी। नौ सितम्बर की सुबह गांधी दिल्ली पहुंचे। गांधी ने महसूस किया कि सितम्बर की यह परिचित खुशगवार सुबह नहीं है। चारो तरफ मुर्दा शांति है। स्टेशन पर गांधी को लेने पटेल आये थे। पर उनके चेहरे से मुस्कान गायब थी। जो सरदार कठिन संघर्ष के दिनों में भी खुशगवार दिखते थे, आज उनके चेहरे पर मायूसी थी। गांधी की चिंता बढ़ाने के लिए इतना काफी था। कार में बैठते ही सरदार ने चुप्पी तोड़ी: पिछले पांच दिनों से दंगे हो रहे हैं। दिल्ली मुर्दों की नगरी बन गयी है।

गांधी अपनी पसंदीदा वाल्मीकि बस्ती नहीं ले जाये गए। उनके रुकने की व्यवस्था बिड़ला भवन में थी। गाड़ी यहां पहुंची ही थी कि प्रधानमंत्री नेहरू भी आ गए। यह संयोग नहीं था। उनके चेहरे का लावण्य गायब था। झुर्रियां महीने भर में अपेक्षकृत ज्यादा बढ़ गयी थी। एक सांस में उन्होंने 'बापू' को सारी बातें बताई। लूटपाट, कत्लेआम, कर्फ्यू सब जानकारी दी। पाकिस्तान से कैसे कह सकते हैं कि वहां अपने नागरिकों की हिफाजत करे..किन्हीं मशहूर सर्जन डॉ जोशी का जिक्र किया जो हिन्दू-मुसलमान में भेद किये बिना सबकी समान सेवा करते थे, उनको मुस्लिम घर से गोली लगी। बच न पाए।

शांति के लिए सब जुटे थे। गांधी के लोग और सरकार भी। गांधी की दिनचर्या, पहले की तरह, जारी थी। रोज प्रार्थना सभा में गांधी अपनी बात कहते। रेडियो से प्रसारण होता। पाकिस्तान से आनेवाले हिन्दुओं और सिक्खों की तादाद कम नहीं हो रही थी। वे हिंसा और नफरत की झुलस के इस कदर शिकार थे कि उनकी तमाम संवेदनाएं स्थगित हो गई थीं। उनमें से अधिकांश गांधी को न तो सुन पा रहे थे, न समझ। वे हिंसा और प्रति हिंसा के बीच झूल रहे थे। वे यह भी नहीं देख पा रहे थे कि गांधी पाकिस्तान पर नैतिक दबाव बना रहे हैं। जिन्ना को उसके वादे की याद दिला रहे हैं कि अपने नागरिकों की रक्षा करें।

गांधी भारत को भी उसके वचन याद दिला रहे थे। वे भारत को अपनी वचन-भंगता का कसूरवार नहीं देखना चाहते थे। अपने वचन पर कायम रहने में गांधी, दुनिया के समक्ष भारत की, नैतिक शक्ति की बढ़ोतरी देखते थे। दोनों देशों में फैल रही हिंसा और नफरत के खिलाफ वे रोज योजनाएं बना रहे थे और उसपर अमल भी कर रहे थे। जनवरी की हाड़तोड़ ठंड आ गई थी। गांधी को गवारा नहीं था कि भारत या पाकिस्तान, कोई भी, अपना विश्वास तोड़े ; नागरिक - दायित्व से मुकरे। वे पचपन करोड़ रुपए को भी भरोसे की एक कड़ी मान रहे थे। भरोसा और वादे की रक्षा के लिए वे किसी के भी खिलाफ जाने को तैयार थे।। गांधी इसी आत्मबल से नैतिक शक्ति अर्जित करते थे। उन्हें निकट भविष्य में, पाकिस्तान भी जाना था; वहां हिन्दुओं और सिक्खों पर हो रही हिंसा के खिलाफ। वे जिन्ना और पाकिस्तान की सरकार से दायित्व सुनिश्चित कराना चाहते थे। कुछ लोगों को अमन का यह प्रयास पसंद नहीं था। इनको गांधी के उपवास में आत्मशुद्धि नहीं दिखती था। जब सारी दुनिया में गांधी के जयकारे लग रहे थे, कट्टर लोग गांधी मुर्दाबाद चिल्लाते थे। संसार का श्रेष्ठ मस्तिष्क जिनपर रश्क करता था, जिनको आत्मिक पवित्रता का पयार्य मानता था, अपने ही देश के कुछ लोग उसे नहीं समझ रहा थे .....

***

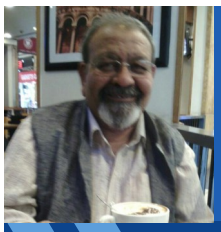

विनय शुक्ला
मास्को—सोवियत गणराज्य

गूगल अनुवाद के खतरे

इंटरनेट और कृत्रिम बुद्धि के इस युग में लोग ज्ञान अर्जन के लिए गूगल का उपयोग करने लगे हैं। मुझे याद आता है की मेरा नाती,जब 5 वर्ष का ही था और उसे जब अपनी पसंद के कार्टून देखने की इच्छा होती पर उसे टाइप करना नहीं आता था तो वह बस "हेलो गूगल" कह कर अपनी पसंद के कार्टून देख लेता था। नि:संदेह यह गूगल की अनेक सुविधाओं में उपयोगी है विशेषकर जब आप कीबोर्ड का उपयोग करने में असमर्थ हों। अगर आपके उपयोग की भाषा अंग्रेजी है तो गूगल की उपयोगिता के बारे में दो राय नहीं हो सकतीं, फिर भी कुछ अपवाद हो सकते हैं जिनमें गूगल के आर्थिक हित रखे जा सकते हैं। वैसे भी गूगल कोई धर्मार्थ प्रतिष्ठान तो है नहीं,उसके अपने व्यावसायिक हित हैं जिन्हें उसे पूरा करना होता है। यहां हम गूगल अनुवाद की चर्चा करेंगे, हमने कभी न कभी इसका प्रयोग किया होगा और अपना माथा ठोका होगा।

इस लेख का विचार इस प्रकार आया आजकल माल और पार्कों में गर्मागर्म मक्का के उबले दाने बिकते हैं जो फ्रोजन दानों को उबाल कर ठेलों पर बेचे जाते हैं। मैंने भी घर के लिए फ्रोजन मक्का के दाने मंगवा लिए पर उन पर बनाने की विधि नहीं थी, इस लिए स्वाभाविक है कि मैंने गूगल विश्वविद्यालय का रूख लिया। हालांकि सवाल अंग्रेजी में पूछा गया था पर एक उत्तर हिंदी में भी था और मैंने उसे ही खोला। जब पढ़ना शुरू किया तो कुछ समझ में आया और कुछ नहीं, इस लिए उस वेबसाइट के अंग्रेजी मूल संस्करण को खोला, गूगल अनुवाद का नमूना है:

1.तैयार करना. एक बर्तन में पानी भरें (प्रत्येक कप मक्के के दानों के लिए लगभग ½ कप पानी)

2.मिलाना. मक्का और थोड़ा मक्खन डालें (मैं प्रति कप मक्का में 1 चम्मच की सिफारिश करता हूँ).

3.फोड़ा. मिश्रण को उबाल लें।

4.रसोइया. लगभग 2-3 मिनट तक पकाएं या जब तक मकई आपकी इच्छानुसार नरम न हो जाए।

5.परोसें. पानी निकाल दें और यदि चाहें तो अतिरिक्त मक्खन और नमक डालें। मुझे तीसरे और चौथे कदम ने अजूबे में डाल दिया।

अब मूल अंग्रेजी वेबसाइट को लें:

1.Prepare. Fill a pot with water (about ½ cup of water for each cup of corn kernels).

2.Combine. Add the corn and some butter (I recommend 1 teaspoon per cup of corn).

3.Boil. Bring the mixture up to a boil.

4.Cook. Cook for about 2-3 minutes or until the corn is as tender as you like.

5.Serve. Drain off the water and add additional butter and salt if desired.

तब पता चला कि फोड़े की जगह उबालना और रसोइए की जगह पकाना होना चाहिए था। ऊपर से पता चला कि यह विधि एक अमेरिकी गृहणी द्वारा सुझाई गई थी, जबकि हिंदी अनुवाद के दूसरे कदम से लगता है कि यह किसी पुरुष ने लिखी है। यदि किसी दवा या उपचार की विधि का अंग्रेजी से हिंदी में गूगल ने अनुवाद किया और आपको इंग्लिश का ज्ञान नहीं है, तो भयंकर परिणाम हो सकते हैं। अत: इस संबंध में गूगल अनुवाद के साथ एक वैधानिक चेतावनी जरूरी है।

कृत्रिम बौद्धिकता के दौर में यह बड़ा खतरनाक हो जाता है। मानव की सहज बुद्धि का महत्व कम नहीं बल्कि बहुत बढ़ जाता है और यह बात हमें उदीयमान पीढ़ी को अच्छी तरह समझानी चाहिए।

***

भावना कुँवर
सिडनी—ऑस्ट्रेलिया

एक थी, सती सुलोचना

सुलोचना नाग कुल में पैदा हुई वासुकी नाग (शेषनाग) की पुत्री थी। जिनका विवाह रावण के ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद के साथ हुआ था। सुलोचना पतिव्रता एवं तेजस्वी नारी थी। राम की पत्नी सीता, लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के पतिव्रता होने की जहाँ हम बात करते हैं, तो वहीं हम सुलोचना के पतिव्रता होने की बात को कैसे भुला सकते हैं, जिन्होंने अपने पति की मृत्यु को प्राप्त करने के पश्चात स्वयं को अग्नि के सुपुर्द कर दिया था।

सीताहरण के बाद राम और रावण की सेनाओं में युद्ध चल रहा था। राम दल के योद्धाओं का नेतृत्व शेषनाग के अवतार लक्ष्मण कर रहे थे। रावण की तरफ से मेघनाद मोर्चे पर थे। लक्ष्मण और मेघनाद में घमासान युद्ध हुआ। लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके मेघनाद का वध कर दिया और उनके कटे हुए शीश को राम के पास ले जाया गया क्योंकि जब लक्ष्मण युद्ध के लिए जा रहे थे तब राम ने कहा था-'इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि तुम अपनी वीरता और रणकौशल से मेघनाद का वध कर दोगे, किंतु इस बात का विशेष ध्यान रखना कि मेघनाद का शीश पृथ्वी पर न गिरने पाए क्योंकि वह एक नारी-व्रतपालक है और उसकी पत्नी सुलोचना पतिव्रता स्त्री है, ऐसी पतिव्रता, साध्वी स्त्री के पति का शीश अगर पृथ्वी पर गिरा तो हमारी पूरी सेना ध्वस्त हो जाएगी।' युद्ध भूमि में लक्ष्मण ने वैसा ही किया। मेघनाद का शीश बाण के द्वारा उतार लिया और उसे पृथ्वी पर भी नहीं गिरने दिया। तत्पश्चात हनुमान मेघनाद के कटे हुए शीश को भगवान श्रीराम के पास ले गए।

उधर युद्ध चल रहा था और इधर सुलोचना का मन बहुत व्यथित और विचलित हो रहा था। वह बार-बार दासी से अपने मन की बेचैनी को बता रही थी कि तभी आसमान से उड़ती हुई एक कटी भुजा सुलोचना के सामने आ गिरी। सुलोचना पहले तो बहुत आश्चर्य चकित हुई परन्तु दूसरे ही पल कातर स्वर में विलाप करने लगी। उसे आशंका हुई कि ये उसके पति मेघनाद की ही भुजा है। परन्तु उसने उस भुजा को स्पर्श नहीं किया। उसने सोचा अगर यह भुजा किसी अन्य पुरुष की हुई और मैंने इसको स्पर्श कर दिया, तो मुझ पर, पर-पुरुष को स्पर्श करने का दोष लग जायेगा।

अब सुलोचना दासी से कलम-दवात लाने को कहती है। जब दासी कलम-दवात ले आती है तब सुलोचना भुजा को संबोधित करते हुए कहती है- 'हे भुजा, यदि तू मेरे पति की भुजा है, तो सारा वृतांत लिख दे।' भुजा ने पूरा वृतांत लिख दिया-"हे प्रिये ये भुजा मेरी ही है, लक्ष्मण के साथ मेरा युद्ध हुआ, जो बहुत तेजस्वी और समस्त दैवीय गुणों से संपन्न हैं। उनके सम्मुख युद्ध में मेरी एक न चली। उन्हीं के द्वारा मेरा वध हो गया है। मेरा शीश श्रीराम के पास है। तुम जाकर वहाँ से ले आओ।'

सुलोचना अपने पति की भुजा द्वारा लिखी गई पंक्तियाँ पढ़कर व्याकुल और दुःखी हो जोर-जोर से विलाप करने लगी। सुलोचना ने निश्चय किया कि अब उसे सती हो जाना चाहिए किन्तु तभी उसे विचार आया कि पति का शव तो युद्ध-भूमि में पड़ा है और शीश राम के पास है तो बिना शीश या शव के वह कैसे सती हो सकती है। यही सब सोचकर वह अपने ससुर रावण के पास पहुँची और विलाप करते हुए अपने ससुर रावण को पूरा वृत्तांत बताया। रावण पुत्र-वधू को विलाप करते देख बहुत दुःखी हुआ और गुस्से से बोला कि-'हे पुत्री! तुम शोक मत करो, मैं रक्त की नदियाँ बहा दूँगा, सहस्त्रों शीश मैं अपने बाणों से काट डालूँगा'। तब सुलोचना शांत भाव से कहती है-'पिताजी! सहस्त्रों क्या करोड़ों शीश भी कट जाएँ तो क्या मेरे पति के शीश की पूर्ति कर पाएँगे? पिताश्री! आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे पति का शव यहाँ मँगा दीजिए'। तब रावण बोला -'हे पुत्री! तुम स्वयं ही राम-दल में जाकर अपने पति का शव प्राप्त करो। जिस शिविर में एक पत्नीव्रती श्री राम, बालब्रह्मचारी हनुमान तथा परम जितेन्द्रिय लक्ष्मण विद्यमान हैं, उस शिविर में तुम्हें किसी भी प्रकार का भय होना ही नहीं चाहिए। इन महापुरुषों के द्वारा तुम बिल्कुल भी निराश नहीं लौटायी जाओगी इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।'

सुलोचना रावण की बात सुनकर अपने पति मेघनाद का शीश लेने के लिए राम के पास पहुँची। राम सुलोचना के आगमन का समाचार सुनकर स्वयं ही सुलोचना के पास पहुँच जाते हैं और कहते हैं-'हे देवी!

तुम्हारे पति एक बड़े योद्धा और बड़े पराक्रमी पुरुष थे किन्तु विधि का लेखा भला कौन टाल सकता है। तुम्हें इस अवस्था में देखकर मेरा मन बहुत दुःखी हो रहा है'। राम का हृदय बहुत द्रवित हो उठा और वो वरदान से मेघनाद को जीवित करने की बात करने लगे। तभी सुलोचना बोली - 'हे राम! आपका त्रेता युग में अवतार पृथ्वी से पाप का भार कम करने और पापियों का विनाश करने के लिए हुआ है। आपने मेरे पति को मोक्ष प्रदान किया है। मैं भी मोक्ष पाना चाहती हूँ'।

राम सुलोचना से पूछते हैं -'हे देवी! अपना यहाँ आने का प्रयोजन बताएँ, मैं आपकी किस तरह से सहायता कर सकता हूँ?' सुलोचना डबडबाए नेत्रों से राम की ओर देखते हुए कहती है कि- 'मैं अपने पति मेघनाद का शीश लेने यहाँ आई हूँ, जिन्हें पराक्रमी लक्ष्मण ने मार गिराया है। मेरे पति का शीश मुझे दे दीजिए, मैं उनके साथ सती होना चाहती हूँ।' भगवान राम ने सम्मान सहित मेघनाद का शीश मँगाया और सुलोचना को दे दिया। सुलोचना अपने पति का छिन्न-भिन्न शीश देखकर फूट-फूटकर विलाप करने लगी। विलाप करते-करते समीप खड़े लक्ष्मण की ओर मुड़कर बोली-'हे लक्ष्मण! आप यह गर्व बिल्कुल मत करना कि आपने मेरे पति का वध कर दिया है। मेरे पति का वध आप इसलिए कर पाए हैं क्योंकि आपकी पत्नी उर्मिला पतिव्रता स्त्री हैं। मेरे पति मेघनाद, पतिव्रता स्त्री माता सीता का अपहरण करने वाले रावण के सुपुत्र होने का धर्म निभा रहे थे, इसीलिए उन्होंने उनकी तरफ से युद्ध किया और मृत्यु को प्राप्त हो गए।'

उल्लेखनीय है कि वनवास के समय जब राम-सीता और लक्ष्मण वन को प्रस्थान कर रहे थे, तब लक्ष्मण उर्मिला को अपने साथ नहीं ले गए थे। वे उनको माताओं और अन्य सभी परिजनों की सेवा करने के लिए वहीं रहने को कहकर अकेले ही राम और सीता के साथ वन को प्रस्थान कर गए थे। लक्ष्मण वन में पूरे चौदह वर्षों तक बिना सोए रहे। लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला चौदह वर्षों तक दिन-रात अपने पति के लिए सोती रहीं। उधर मेघनाद को यह वरदान मिला हुआ था कि जो व्यक्ति चौदह वर्षों तक बिना सोए रहेगा वही व्यक्ति उसको युद्ध में पराजित कर सकेगा। यही कारण था कि लक्ष्मण मेघनाद को मृत्यु देकर मोक्ष की प्राप्ति करा पाए। उर्मिला का पतिव्रता होना भी लक्ष्मण की विजय का कारण बना।

वहाँ उपस्थित सभी योद्धा, वानर दल और सुग्रीव यह नहीं समझ पा रहे थे कि सुलोचना को मेघनाद का शीश वहाँ होने का पता कैसे चला? सुग्रीव प्रयास करने के पश्चात भी खुद को रोक नहीं पाए और बोले कि- 'आपको ये कैसे पता चला कि मेघनाद का शीश श्रीराम के पास है।'

सुलोचना ने पूरा वृत्तांत कह सुनाया कि किस तरह कटी हुई भुजा आसमान में उड़ते हुए उनके पास आ गिरी और भुजा ने किस तरह लेखनी की सहायता से सारा वृतांत लिख दिया। यह सुनकर वहाँ खड़े सभी वानर भी परिहास करने लगे और सुग्रीव भी व्यंग्य भरे शब्दों में बोले कि- 'जब एक निष्प्राण भुजा लिख सकती है तो फिर तो यह कटा हुआ शीश भी हँस सकता है।'

यह सब सुनकर श्रीराम ने कहा- 'तुम पतिव्रता की शक्ति को नहीं जानते सुलोचना परम पतिव्रता स्त्री हैं, इनमें पूरी दुनिया को हिला देने की क्षमता है, यदि सुलोचना चाहें तो यह शीश भी हँस सकता है। यह कहकर राम ने सुलोचना की तरफ देखा। सुलोचना ने श्रीराम के मुख पर आए हुए भावों को भली-भाँति समझ लिया और उसने कहा-'यदि मैं मन, वचन और कर्म से अपने पति को देवता मानती हूँ, तो मेरे पति का यह कटा हुआ शीश हँस पड़े।' सुलोचना अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि वह कटा हुआ शीश जोर-जोर से हँसने लगा। वहाँ उपस्थित सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए और सभी ने हाथ जोड़कर पतिव्रता सुलोचना को प्रणाम किया।

विलाप करती हुई सुलोचना अपने पति मेघनाद का शीश लेकर चल पड़ी और जाते-जाते राम से प्रार्थना करने लगी कि-'हे प्रभु श्रीराम! आज मेरे पति के अंतिम संस्कार का दिन है और मैं उनकी अर्द्धांगिनी उनके साथ सती होने जा रही हूँ तो मेरी आपसे विनती है कि- 'आज के लिए युद्ध को रोक दिया जाए।' भगवान श्री राम ने सुलोचना की प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

सुलोचना अपने पति मेघनाद का शीश लेकर लंका लौट आईं। लंका में समुद्र के किनारे पर चंदन की लकड़ियों से एक चिता तैयार कराई गई। सुलोचना अपने पति का शीश अपनी गोद में लेकर चिता के बीच में बैठ गई। अग्नि ने सुलोचना को स्वयं में समाहित कर लिया। सती होने के कारण ही सुलोचना का नाम 'सती सुलोचना' पड़ा।

***

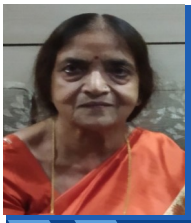

रजनी सिंह
डिबाई-बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश,मोबाइल 9412653980

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी साहित्य की भूमिका

भारतवर्ष के स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय है। अंग्रेजी शासन के विरोध में भारतवासियों के हृदय में क्रोधाग्नि धधक उठी थी। देश प्रेमियों ने ब्रिटिश शासन से मुक्त होने के लिए तन, मन, धन से आदोलन छेड़ रखा था। ब्रिटिश सरकार शक्तिशाली थी और भारतीयों के पास इतने संसाधन नहीं थे कि वे उनसे युद्ध कर सकें। ऐसे में साहित्य ने अपनी गुप्त और विस्तृत शक्ति को इस संग्राम में झोंक कर इसे बल दिया था।

'रोटी और कलम' को प्रतीक बनाया गया। देशप्रेमी, अखबार, पत्रिका, इश्तहार आदि के संपादन कार्य में जुट गए। 'पयाम-ए-आजादी' के संपादक अजीमुल्ला खान ने हिंदू मुस्लिम दोनों को आगाह किया कि अंग्रेज तुम्हें आपस में लड़ा कर देश को लूट रहे हैं। 'वंदे मातरम' और 'इंडिया इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स ऑफ 1857' पुस्तकों को जब्त कर लिया गया। देशप्रेमी साहित्यकार जिस भी अखबार और पत्रिका का संपादन करते, उन्हीं पर अंग्रेज हमला करते और सारी सामग्री जब्त कर लेते। लेकिन स्वतंत्रता के दीवाने साहित्यकार अन्य स्रोतों से अपनी कलम चलाकर आम आदमी तक पहुंच जाते। पत्रकार बंधु पत्रिकाओं के माध्यम से देश की विभिन्न समस्याओं और ब्रिटिश शासन द्वारा लागू किया जा रहे जन विरोधी कानून और आदेशों का विरोध करने के लिए जनता को जागरूक कर रहे थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र, हरिऔध, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण भट्ट आदि ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने अपनी लेखनी से भारतीयों के मन में देश प्रेम की ज्वाला जला दी थी। कथा सम्राट प्रेमचंद ने कहानी और उपन्यासों में रोटी रोजी में लगी जनता को ललकारा और उन्हें देश के प्रति दायित्व बोध कराया। क्रांतिकारी राम प्रसाद बिस्मिल ने देश प्रेम और बलिदान के गीतों की झड़ी लगा दी। ये गीत आम आदमी की जुबान पर चढ़ गए:

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है

तो दूसरी तरफ भगत सिंह जैसे आजादी के परवाने गा उठे-

उसे फिक्र है हरदम नया लर्जे जफा क्या है
हमें यह शौक देखें तो सितम की इंतहा क्या है

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदू मुस्लिम संकीर्णता समाप्त हो गई थी। अशफाक उल्ला जैसे देश प्रेमी अपनी आवाज हिंदुओं के साथ मिलाकर चल रहे थे। महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक जैसे नेता अपने लेखन से भारतवर्ष में स्वतंत्रता की अलख जगा रहे थे। तिलक ने जेल में ही गीता संदेश लिखकर सुषुप्त जनता को अपने कर्तव्य के प्रति ललकारा था, पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जेल में ही डिस्कवरी ऑफ इंडिया लिखकर भारत देश के समृद्ध गौरव का बखान इस पुस्तक में किया था। महात्मा गाँधी का पूरा जीवन स्वतंत्रता संग्राम के लिए साहित्यिक सृजन से भरा खजाना है। लेखन, अनुवाद, पत्रकारिता आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य सृजन किया था। उन्होंने रस्किन की अनटू द लास्ट का अनुवाद 'सर्वोदय' नाम से

किया। गांधी जी की आत्मकथा 'सत्य पर मेरे प्रयोग' साहित्य की धरोहर है। 1920 में भारत के साहित्यिक पटल पर अपनी अमित छाप छोड़ चुके थे गांधी जी। उनके संदेश साहित्य पटल पर अनेक साहित्यकारों द्वारा संकलित किए गए और स्वतंत्रता संग्राम की आवाज बन गए। रोमा रौला और मार्शल मैक्लुहान जैसे विशेषज्ञों ने उनके संदेशों को अपना विषय बनाकर साहित्य सृजन किया। महात्मा गांधी ने स्त्री स्वतंत्रता, किसानोद्धार, अछूतोद्धार, स्वदेशी जैसे देश भक्ति और गरीबी उन्मूलन विषयों पर प्रमुखता से लेखन किया था। मैथिलीशरण गुप्त ने

'नर हो न निराश करो मन को
कुछ काम करो, कुछ काम करो'

जैसी कविताओं से नौजवानों में उत्साह का संचार किया। अपनी भाषा, संस्कृति और प्राचीन गौरवशाली अस्मिता का स्मरण करते हुए 'जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसदार नहीं' जैसी रचनाओं से भारतीयों के मन में जोश जगाया। सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, नरेंद्र शर्मा, हरिवंश राय बच्चन जैसे अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से साहित्य रचकर स्वतंत्रता संग्राम के प्रति समस्त भारद्वासियों को एकजुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाने और देश के लिए मर मिटने को तत्पर रहने को प्रेरित करने वाला साहित्य घर-घर तक पहुंचाया। साहित्य के माध्यम से सत्य अहिंसा का संदेश समस्त देशवासियों और प्रवासी भारतीय तक पहुंचा जिससे वह एकजुट होकर स्वतंत्रता संग्राम में अपने -अपने स्तर से सहयोग करने लगे। साहित्य ही भारत के खंडित समाज को जोड़ने का एक सशक्त माध्यम बना। साहित्य ने पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के सभी राज्यों में स्वतंत्रता संग्राम के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। ग्रामीण इलाकों में लोकगीतों की रचना कर शौर्य उत्पन्न किया गया। सुभद्रा कुमारी चौहान की शौर्य और स्वतंत्रता की दीवानी लक्ष्मी बाई पर लिखी कविता हर भारतीय की जुबान पर थी—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी

साराशंत: में यह शाश्वत सत्य किसी से छुपा नहीं है कि स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य ने अपनी विभिन्न विधाओं में लिखे साहित्य से बहुमूल्य योगदान दिया। साहित्य की भूमिका स्वतंत्रता प्राप्ति में अन्य साधनों की तरह अविस्मरणीय रही। बिस्मिल की इस गीत से अपनी बात संपन्न करती हूं:

अय शहीदो मिल्के मिल्लत
मैं तेरे ऊपर निसार

***

निर्देश निधि
बुलंदशहर-उत्तरप्रदेश, मो. 9358488048

चोर कौन

भारतीय सभ्यता संस्कृति से अवगत होने के लिए एक विदेशी यात्री जॉन 14 घंटों की थकान भरी लंबी यात्रा कर भारत आया। हालांकि वो छह फीट चार इंच लंबा हट्टा - कट्टा जवान है पर लंबी हवाई यात्रा हरेक की शक्ति क्षीण कर देती है, वही जॉन के साथ भी हुआ। जैसे ही वह प्लेन से उतरा उसने फोन से टैक्सी बुक करनी चाही परंतु फोन का सिम काम नहीं कर रहा था अतः उसने कैब काउंटर जाकर एक प्रीपेड टैक्सी ले ली। वो हिंदुस्तान कंपनी की एक काली एम्बेसेडर कार जिस पर पीली धारियाँ थीं । हालाकि अब कंपनी ने इसका निर्माण बंद कर दिया है फिर भी यह अब तक अपने गौरवपूर्ण दिनों की तरह ही चमचमा रही थी। पाँच फिट सात इंच लंबे सामान्य कद काठी वाले ड्राइवर राम कुमार के चेहरे पर एक विनम्र मुस्कुराहट थी जब वो जॉन का सामान टैक्सी में रख रहा था ।

हालाकि उसकी अँग्रेजी भाषा कतई अच्छी नहीं फिर भी वो जॉन की मात्र भाषा में बोल कर उसे अपनेपन का आभास कराता है, “व्हेयर टू सर?” जॉन उसे एक पंचतारा होटल का पता देता है जो एयरपोर्ट से लगभग आधे घंटे की दूरी पर था। राम बात छेड़ता है,”यू आर हियर फॉर टूर, सर?”

“येस” छोटा परंतु त्वरित उत्तर दिया जॉन ने, जो राम को थोड़ा नागवार गुज़रा क्योंकि राम बातें करने के मूड में आ गया था परंतु जॉन पूरे चौदह घंटे थकाऊ हवाई यात्रा में बिता कर आया था। बाकी रास्ता जॉन ने अपने सिम को चालू करने के प्रयास में और राम ने जॉन की सहूलियत का ध्यान रखते हुए कम आवाज़ में सत्तर के दशक की बॉलीवुड फिल्मों के गाने सुनते हुए बिताया। वे निर्धारित समय से पाँच मिनिट पहले ही गंतव्य पर पहुँच गए । जॉन जब राम को किराया देने वाला था तो उसने देखा की उसके पास “कनवरटेड करेंसी“ नहीं थी। उसने राम को डॉलर देने की पेशकश की तो उसने खुशी - खुशी स्वीकार कर लिया और होटल से तीस किलोमीटर दूर अपने घर चला गया ।

अगले दिन राम ने होटल के रिसैप्शन पर अपने दोस्त से पूछा डॉलर को रुपये में कैसे बदला जाता है उसने पास वाले बैंक का पता लिया । पंद्रह मिनट लाइन में लगे रहने के बाद उसका नंबर आ गया । “कनवर्ज़न “ और दूसरी बातें जान लेने के बाद बैंक कर्मी विजय ने राम से नोट मांगा ।

नोट देखते ही विजय ने बैंक मैनेजर को बुलाया। राम बोला कोई परेशानी है क्या? उसने सोचा शायद नोट नकली है। मैनेजर आया और विजय से कुछ बातें करने के बाद राम से बोला, ”कहाँ से चुराया है?” एक ऐसा प्रश्न जिसे राम सोच भी नहीं सकता था। राम नहीं जानता था कि जॉन ने उसे सौ डॉलर का नोट दे दिया था जो कि भारतीय रुपयों में आठ हज़ार रुपयों के बराबर था। राम ने बहुत प्रयास किया उन्हें समझाने का कि उसने वो नोट चुराया नहीं है पर खुद को निर्दोष साबित करने का उसका हर प्रयास निष्फल रहा। उसे बहुत घबराहट हो रही थी। इसलिए नहीं कि उसने सौ डॉलर का नोट चुराया था बल्कि इसलिए कि कोई बेचारा सिर्फ तीस मिनिट के सफर के लिए पूरे आठ हज़ार रुपये दे गया था। उसकी इतनी घबराहट देख कर बैंक मैनेजर ने पुलिस बुला ली थी। राम पुलिस को भी अपना निर्दोष होना साबित करने में नाकाम रहा। एक घंटे की पूछताछ के बाद राम को तो पुलिस ने छोड़ दिया था पर सौ डॉलर के नोट को नहीं।

***

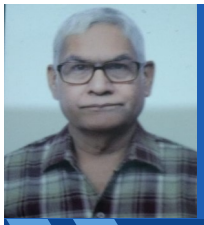

डॉ. इंद्र कुमार शर्मा 'आदित्य'
राजेंद्र नगर गाजियाबाद उत्तर प्रदेश
मो. 9860212983

गुलावठी कांड और बाबू बनारसीदास

भारतीय संग्राम के दौरान कई बड़े जनसंघर्ष आज भी याद किये जाते हैं। वर्ष 1930 में हुए गुलावठी कॉण्ड को उनमें प्रमुख माना जाता है। देश विदेश में काकोरी कांड की तरह गुलावठी कांड भी इतिहास के पन्नों में दर्ज है। गुलावठी तथा इसके आस पास के गांवों के किसानों और अन्य वर्गों ने यहाँ जो बलिदानी भूमिका निभायी थी. वह इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में दर्ज है। गुलावठी कांड से ही आजादी के युवा क्रान्तिकारी नायक के रूप में बाबू बनारसी दास जी का पहला परिचय देश को मिला था। 12 सितम्बर 1930 के बाद अंग्रेजों ने बाबूजी एवं उनके साथियों तथा परिजनों पर जमकर कहर बरपाया था, पर आजादी के ये दीवाने सिपाही लाख मुसीबतों के बावजूद जंग जारी रखे हुए थे।

वैसे तो गुलावठी 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में भी अग्रणी भूमिका में आया था, पर 1930 के गुलावठी कांड को याद करके आज भी तमाम पुराने लोग सहम जाते हैं। गोरखपुर के चौराचारी कांड की तरह ही अंग्रेजों के लिए गुलावठी कांड भारी पड़ा था। हालांकि दोनों घटनाओं में काफी फर्क रहा है, लेकिन गुलावठी कांड ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांव गांव में ऐसी चिंगारी फूकी कि अंग्रेजी राज हिल गया था।

उस समय के नौजवान कांग्रेसी नेता बाबू बनारसी दास के आह्वान पर 12 सितम्बर 1930 को गुलावठी में प्राचीन बड़ा शिव मंदिर पर एक जनसभा आयोजित की गयी थी। इसमें किसानों-मजदूरों, व्यापारियों तथा समाज के विभिन्न तबकों का विशाल जमावडा हुआ। अंग्रेजों के खिलाफ हुई इस सभा में मेरठ के जाने माने स्वतन्त्रता सेनानी चौधरी खुशीराम को मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था, लेकिन भारी भीड़ को देखते हुए प्रशासन ने इस सभा को अवैध घोषित कर दिया, सभा की अध्यक्षता श्री बनारसीदास जी कर रहे थे। फिर भी आजादी के दीवानों ने सभा को जारी रखा। जिस समय हजारों नागरिक शांति और अनुशासन के साथ आजादी के लिए लड़ रहे नेताओं के भाषण सुन रहे थे, तभी दमन के लिए कुख्यात रहा गुलावठी का थानेदार मोहम्मद रजा खां वहाँ सिपाहियों के साथ आ पहुँचा। उसने भीड को ललकारा और ग्रामीणों को आतंकित करने के लिए भीड़ पर अपना घोड़ा दौड़ा दिया। वहीं उसके आदेश से सिपाहियों ने निर्दोष लोगों पर लाठियाँ चलानी शुरू कर दी। इससे सभा में भगदड मच गयी और काफी लोग घायल हो गये।

पुलिस के इस अत्याचार को पडोस के भटौना गाँव के निवासी चौधरी भगवान सिंह से नहीं देखा गया, उन्होनें थानेदार रजा खाँ पर अपनी लाठी से एक ऐसा वार किया कि वह घोडे से गिरने के बाद दोबारा उठ नहीं सका। भीड के तेवर और थानेदार को मृत देख पुलिस वाले पहले तो भाग गये, लेकिन थोड़ी देर बाद वे बडी संख्या में पुलिस बल को लेकर सभा स्थल पर पहुँचे और निहत्थे नागरिकों पर लाठी चार्ज करने के साथ गोली चलानी भी शुरू कर दी। इस घटना में 23 राउण्ड गोलियाँ चली और

काफी लोग घायल हुए। इसमें सभा के मुख्य वक्ता चौधरी खुशीराम को थाने में ले जाकर उनका एक हाथ गोलियों से छलनी कर दिया गया। बनारसीदास जी की पीठ पर भी काफी लाठियां लगी तथा सिर पर भी लाठिया लगी, जिससे उनका सिर फट गया, जिसमें 15 टांके लगे और हाथ में एक गोली भी लगी।

गुलावठी कांड में पुलिस की गोली से शहीद हुए लोगों में भटौना के भगवान सिंह, मुन्ना लाल गुसा तथा नवल सिंह, गुलावठी के चंदू लाल और जाहरिया सिंह, भवन बहादुर नगर के लाला कन्हैया लाल तथा सूरजपुर के लाला कन्हैया के नाम प्रमुख हैं। वहीं इस कांड में घायलों की संख्या तो बहुत बडी थी बुलन्दशहर गजेटियर के मुताबिक इस कांड में आसपास के गावों के कुल एक हजार लोगों को पकडा गया, उनकी सम्पत्तियों जब्त की गयीं और 45 लोगों पर मुकद्दमा चला। इनमें बाबू बनारसी दास, किशन स्वरूप तथा सरदार सिंह के नाम प्रमुख हैं।

गुलावठी थाने में मौजूद उर्दू लिपि में 1930 के अभिलेख में यह दर्ज है कि बाबू बनारसी दास को 12 सितम्बर 1930 को ताजिराते हिन्द की दफा 148, 149,302 के तहत गिरफ्तार किया गया था। उनके अलावा गंगादास, दुलीचन्द, लखपत सिंह, बाबू सिंह, शीशपाल, शंकर सिंह, मानिकराम, खुशीराम, कृपाल समेत कई देश भक्त गिरफ्तार किए गए। इसमें से 45 लोगों को 10 से 14 साल की कड़ी सजाएं मिलीं। लंबी कानूनी प्रक्रिया के बाद हाईकोर्ट से पांच लोग छूटे तथा और कुछ लोगों की सजाए कम हुई। लेकिन 1947 में जब कांग्रेस मंत्रिमंडल बना तो इस कांड में गिरफ्तार लोगों को ससम्मान मुक्त किया गया। गुलावठी कांड के बाद एवं अंग्रेजों के अत्याचारों के बाद भी इलाके में स्वाधीनता के लिए नया जोश पैदा हुआ। गुलावठी, सिकन्द्राबाद, बुलन्दशहर, शिकारपुर, खुर्जा के व्यापारियों ने बनारसीदास जी के आवाहन पर कई दिनों तक विरोध में अपनी दुकानें बंद रखी और आसपास के गांवों में भी विरोध जारी रहा।

गुलावठी कांड में बाबूजी जब गिरफ्तार हुए तो बहुत युवा थे, लेकिन इस घटना ने उनका मानस ही बदल दिया। जैसे ही वे जेल से छूटे तो 1935 में अजमेर डीडवाना में कांतिकारी अंजुम लाल के साथ वे राष्ट्रीय विद्यालय के सूत्रधार बने। इसके लिए उनको कई राष्ट्रीय नेताओं से विशेष सम्मान और सराहना मिली। इन तथ्यों से साफ होता है कि बाबूजी महज 23 वर्ष की आयु में ही काफी महत्वपूर्ण और चर्चित स्वतंत्रता सेनानी बन चुके थे, और 1936 तक उनका कई दिग्गज कांतिकारियों से बहुत गहरा सम्बन्ध बन चुका था। इसी नाते उनके परिवार पर अंग्रेजों का दमन चक्र खूब चला और घर की तलाशियों, कुर्की, नोटिस तथा जुर्माने का काम भी लगातार चलता रहा, फिर भी वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए और बुलन्दशहर में उन्होंने काफी समय तक मोहनकुटी सत्याग्रह आश्रम में रहकर भी क्रान्तिकरी गतिविधियों का संचालन किया।

आजादी के बाद गुलावठी कस्बे में शहीदों के सम्मान में 1948 में एक शिलालेख स्थापित किया गया। इसी तरह 1950 से इन सेनानियों के बलिदानों की याद में स्थानीय डी०एन०इण्टर कालेज में शहीद मेला भी लगना शुरू हुआ। इन प्रयासों से नयी पीढी अतीत से बखूबी परिचित हो रही है।

***

अवधेश सिंह
वैशाली, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश, मो· 9450213555

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस - मौलिक सृजन को चुनौतियां

दूरसंचार विभाग में कंप्यूटरीकरण की शुरुआत 1994 में हुई थी। तब मैं कार्याधिकारी के पद पर रहते हुए इस प्रोजेक्ट के निष्पादन में सभी तकनीकी और व्यावसायिक तथा कार्मिक पहलू पर अकेला जानकार था। युवाओं को जानकार आश्चर्य होगा कि उन दिनों कंप्यूटर के प्रति जागरूकता एकदम शून्य थी। तब संदेह और भ्रम काफी ज्यादा थे। जिन्हे कम्प्यूटर "की बोर्ड" पर काम करना था वे कागज और कलम को छोड़ने को राजी नहीं थे।

आज इस दिशा में जो दिख रहा है तब ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। मुझे तब के मिले "प्रशस्ति पत्रों" में उस समय की जिन चुनौतियों और उपलब्धियों का जिक्र है, वे सारे संदर्भ आज मेरे सामने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के विषय में जिंदा होकर सामने आ रहे हैं। पहले मानवीय कार्य शक्ति के मुक़ाबले में कम्प्यूटर खड़ा हो रहा था जबकि वर्तमान में मानवीय कल्पना शक्ति और चिंतन- मनन के सामने एक प्रतिद्वंदी की तरह आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस नामक नयी तकनीक खड़ी है। मुक़ाबला मानव का रोबोट से हो यह उसकी पहली कड़ी है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है।

ज़्यादातर लोगों के सामने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अभी एक थ्योरी जैसा है जबकि मुझे अब इसका रूप दिखने लगा है। अभी हाल में मेरे फेस बुक में एक व्यावसायिक आफ़र मुझे मिला जिसकी तस्वीर इस लेख में दे रहा हूँ। इस आफ़र में मुझे एक बार में एक समय में कुछ राशि को भुगतान करने के लिए कहा गया। विज्ञापन के माध्यम से मुझे मिले इस प्रस्ताव को जब मैंने बारीकी के साथ देखा तो पाया कि यह आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का ही एक उत्पाद है। इस उत्पाद के द्वारा आपमें एक भी शब्द को लिखने की ताकत नहीं रहते हुए भी मात्र 2 मिनट की अवधि में एकदम नयी अद्भुत "ई बुक" या "ई मैगजीन" को कस्टमाइज करते हुए बना देने की क्षमता का दावा दिया गया है।

यह मेरे जैसे कवि गीतकार या मौलिक लेखन करने वाले के लिए इलेक्ट्रिक से कम झटका नहीं था। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का यह उत्पाद हमें ई-मैगजीन के लिए आवश्यक ले आउट, तस्वीरें, हेडिंग, आलेख आदि सभी घटक को खुद हमारे सामने हमारी योजना और हमारी इच्छा को समझते हुए प्रस्तुत करता जाएगा। हमारे

कम्प्यूटर के माउस की एक क्लिक से यह सब हमारी "ई बुक" या "ई मैगजीन" में छपता चला जाएगा। यानि कठिनाइयों से भरा डिजाइन के काम जैसे पेज सेटिंग, फोटो सेटिंग, फॉन्ट साइज, फॉन्ट कलर एवं ग्राफिक्स आदि का उसका स्वचालित सुझाव हमारे मन में चल रहे विचार के अनुकूल होता चला जाएगा और हम स्वयं एक ई बुक बना सकेंगे।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक कृतिम बुद्धि है। यह एक मशीनी मानसिक शक्ति है जो वस्तुओं एवं तथ्यों को समझने, उनमें आपसी सम्बन्ध खोजने तथा तर्कपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है। आप गूगल सर्च इंजिन से आप मन माफिक जानकारी खोज लेते हैं, उसका उपयोग कर लेते हैं। उसी तरह डेटा माइनिंग में लगी हजारों कंपनी और लाखों साफ्टवेयर विशेषज्ञ जो गूगल से ज्यादा डेटा अपने पास रखते हैं वे सब मिलकर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का दिमाग बन जाते हैं। इसलिए यह गूगल से ज्यादा मजबूत, नवीन तथा टिकाऊ डेटा बैंक से पोषित तकनीक है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस काम कैसे करता है। वर्तमान में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के कई उत्पाद विभिन्न विधाओं के लिए उपयोग में हैं। अवगत हो कि स्पेस, मिलेट्री, मेडिकल जलयान, वायुयान, आटोमोबाइल से लेकर रिसर्च के क्षेत्रों में यह टेक्नोलाजी पहले से ही उपयोग में चल रही है लेकिन कोरोना के बाद इसका उपयोग मानव की बौद्धिक क्षमता के मुक़ाबले के लिए विकसित करने की बात तेजी से चल पड़ी है। वर्तमान में प्रयोगिक तौर पर "चैट जीपीटी" नाम से फ्री वेयर के रूप में लोग इसका प्रयोग रिसर्च आदि के लिए कर भी रहे हैं।

गौरतलब है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने आज मौलिक सृजन पर चुनौतियों के बादल घने कर दिये हैं । इससे सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाला वह वर्ग है जो किसी भी विधा में मौलिक सृजन में खुद को खपाये हुए है। वे चित्रकार, मूर्तिकार, वास्तुकार, कवि – लेखक कुछ भी हो सकते हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की नयी तकनीकी ने जहां एक तरफ तमाम देश की सरकारों के नीति निर्धारकों की नींद उड़ा रखी वहीं दूसरी तरफ कानूनी मुद्दों पर भी डिबेट होने लगी है। इन सबके बीच मौलिक सृजन कर रहे असंख्य रचनाकर और उनसे जुड़े बड़े व्यवसाय भी भ्रमित हो रहे हैं।

***

जयश्री बिर्मि
अहमदाबाद,-गुजरात

अहंकार क्यों

किस बात का अहंकार करे मानव ये समझ से परे है। सामान्यत: लोगों को अपने रूप, धन, वैभव, अपने स्टेटस या सामाजिक या राजनीतिक रुतबे आदि का अंहकार होता हैं। रूप का अहंकार हैं तो वह तो उसे अपने पूर्वज या माता-पिता से मिला हैं। वह उसकी अपनी उपलब्धि नहीं है। धन वैभव नसीब से मिला हैं। यदि कोई कहता है कि वह मेहनत करता हैं तो मेहनत करके भी मजदूर धनवान नहीं हैं। अपने रुतबे का अहंकार भी गलत हैं क्योंकि तुम से बड़े रुतबे वालें भी हजारों हैं। यह रुतबा भी एकदम अस्थायी होता है। वक्त के करवट बदलते ही राजा को रंक और रंक को राजा बनने में देर नहीं लगती। फिर जिसके पास जो कुछ हैं उसका उपभोग वे खुद करते हैं, दूसरों के ऊपर रौब झाड़ने का कोई अर्थ नहीं हैं। जिस बात का सामने वाले से सरोकार नहीं हैं उसमें अपनी बड़ाई हांक कर किसी को नीचा दिखाने अर्थहीन हैं। इसे समझकर इंसान अहंकार के दुर्गुण से दूर ही रहेगा और इसी में समझदारी हैं।

अहंकारी व्यक्ति को लोग पसंद नहीं करते या वह खुद अपने घमंड में लोगों से दूर रहता हैं। दोनों हालात में वह अकेला रह जाता हैं। उसकी समाज में स्वीकार्यता कम हो जाती हैं और लोग उसकी निंदा ही करते हैं। नसीब से आज का राजा कल रंक और आज का रंक कल राजा बन सकता हैं। अहंकारी जिसे अपने बर्ताव से आहत करता है वही कल उसके समकक्ष आ जाएगा तब उसकी मानसिकता कैसी होगी,वह न उसके साथ बैठ पाएगा और न ही उससे मुंह फेर पाएगा।

रामायण और महाभारत जैसे युद्ध के बीज अहंकार में ही अंकुरित हुए थे। दुर्योधन हो या रावण दोनों के पतन का कारण उनका अहंकार ही था। कई बार व्यक्ति को अहंकार के कारण अपनी नौकरी या व्यापार में भी नुकसान पहुंचता है। इससे घर परिवार में भी अशांति रहती है, पति-पत्नी के बीच में मनमुटाव रहता है। पति की अच्छी आमदनी, पत्नी के उपर रौब जमाने का साधन नहीं बन जाना चाहिएं। वहीं पत्नी का सौंदर्य या खुद के पैरों पर खड़े होने का मतलब पति को कमतरी का एहसास देने की वजह नहीं होनी चाहिए। ऐसे उदाहरणों को ध्यान में रख आदमी को अपने चरित्र को अहंकार मुक्त रखना चाहिए।

यही धार्मिक पुस्तकों में भी समझाया गया हैं।

***

गीता रस्तोगी "गीतांजलि"
मोदीनगर, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश
मोबाइल : 8279798054

यादों के झरोखे से

यूं तो एक उम्र तक सभी बच्चे प्यारे व सुंदर होते हैं। मैं स्वयं को खुशनसीब मानती हूं कि भगवान ने मुझे अध्यापन कार्य सौंपा। इसी माध्यम से मुझे इन बालगोपालों की सेवा करने का भरपूर अवसर मिला। जब मेरी नियुक्ति एक विज्ञान शिक्षक के रूप में तुलसीराम माहेश्वरी पब्लिक स्कूल में हुई तब मुझे कक्षा सात की कक्षाध्यापिका का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इस वय के बच्चे कक्षा छह और आठ के बच्चों की अपेक्षा अधिक भोले और मासूम होने के साथ साथ अनुशासित भी होते हैं। कक्षा आठ के बच्चे किशोर वय में प्रवेश करने के कारण स्वाभाविक रूप से कुछ परिवर्तनों से गुजरते हैं, जिसका प्रभाव उनके स्वभाव पर भी पड़ता है। अतः ये बच्चे बचपन से थोड़ा दूर होते हुए बड़प्पन के उस दौर से गुजर रहे होते हैं, जिसमें ये कई बार स्वयं को ही नहीं समझ पाते। दूसरी ओर कक्षा छह के बच्चे अभी उतने समझदार नहीं हो पाते।

मैं 13 वर्षों तक कक्षा 7 की क्लास टीचर बनी रही। शिक्षण कार्य के साथ-साथ इन नन्हें, मासूम व प्यारे बच्चों द्वारा जितना आदर व स्नेह मुझे प्राप्त हुआ, उसे मैं ताउम्र नहीं भुला सकती; न ही उसे शब्दों में वर्णित कर सकती हूं। इसी दौर की यह एक घटना है:

विद्यालय में दीपावली उत्सव का आयोजन किया गया था। सब बच्चे बढ़-चढ़ कर इसमें भाग ले रहे थे। कोई रंगोली प्रतियोगिता में तो कोई मेंहदी प्रतियोगिता में अपनी भागीदारी दे रहा था। अधिकांश सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अपनी प्रतिभागिता दे रहे थे। अब समय था, कक्षाओं के अलंकरण महोत्सव का। सभी बच्चे इस दिन की वर्ष भर उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे। उसके उपरांत विद्यालय में दीपावली अवकाश घोषित होना था। बहरहाल विद्यालय एक सप्ताह के लिए बंद हो गया और सभी बच्चे व कार्यकर्ता खुश होते हुए अपने घर को चले गए।

अवकाश समाप्त होने पर जब विद्यालय खुला, तो सभी में एक विशेष उत्साह था। सच ही है कि अवकाश का महत्व भी अति व्यस्तता के बाद ही समझ आता है। इसी प्रकार अवकाश के बाद स्कूल का खुलना बालकों व शिक्षकों, सभी के लिए विशेष महत्व रखता है। प्रातः काल सभी बालक बालिकाएं खुश होते हुए अपनी अपनी कक्षाओं में पहुंच रहे थे। मैं भी अपनी कक्षा में बैठी कक्षा में आने वाले बच्चों का स्वागत कर रही थी। उस दिन जब प्रार्थना के उपरांत उपस्थिति पत्र उठाया तो मालूम हुआ, उपस्थिति सामान्य दिनों की अपेक्षा कुछ कम ही थी। मैं उपस्थिति पत्र बंद करके रखने ही जा रही थी कि तभी मेरी दृष्टि कक्षा के द्वार की ओर गई। वहां मेरी कक्षा का एक सांवला सलोना, होनहार बालक यश खड़ा हुआ, कक्षा के भीतर आने की अनुमति मांग रहा था। मैंने अनुमति प्रदान की और वह भीतर आ गया। मैं उससे देरी से आने का कारण पूछती, इससे पहले ही मेरी दृष्टि उसके बाएं हाथ में पकड़े

रुमाल पर गई, जिससे वह अपने बाएं गाल को ढकने का प्रयत्न कर रहा था । मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैंने उससे उसके इस व्यवहार का कारण पूछा। वह कुछ कहता, इससे पूर्व ही एक अन्य छात्र बोल पड़ा, 'मैडम जी, ये जल गए हैं। इसीलिए अपना चेहरा छिपा रहे हैं।'

यह सुन कर मैं एक पल को दुख व आश्चर्य से मानो जड़वत रह गई। दूसरे ही पल मैंने स्वयं को संभालते हुए यश से पूछा, 'कैसे हुआ यह सब? बेटा, मैंने समझाया था न, पटाखे संभलकर सिर्फ बड़ों की देखरेख में ही जलाना।' 'यस मैडम। हमने पटाखे संभाल कर जलाए थे और दीपावली की रात हम सही सलामत थे।' यह सुनकर मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ ।
'तब, यह सब कैसे और कब हुआ?' मैंने पूछा।
'मैडम, हुआ यूं कि दीवाली से अगले दिन हमारे घर के सामने सारा कूड़ा इकट्ठा हुआ था । किसी ने उसमे आग लगा दी थी जो अभी जली नहीं थी । हम उस कूड़े के ठीक ऊपर मुंह करके देखने लगे। उस कूड़े में कोई बिना जला पटाखा रह गया होगा, जिस पर किसी का भी ध्यान नहीं गया था। बस वही अचानक से फट गया और हमारा चेहरा इस तरह से जल गया।'

पूरी कक्षा उसकी बात सुन कर सकते में आ गई। कुछ बच्चे अपनी सीटों से उठकर हमारे पास आ गए थे। मेरे भी दुख का पारावार न रहा। मेरे बहुत कहने पर उस बच्चे ने अपने चेहरे से अपना रुमाल हटाकर, झुलसा हुआ गाल मेरी ओर किया। उसे देखकर मेरा मन रोने को हुआ।

'एक छोटे से बच्चे को इतना अधिक कष्ट क्यों दिया भगवान ?' मैं मन ही मन यही सोच रही थी।

'तुम स्कूल क्यों आए हो, बेटा? छुट्टी लेकर घर परआराम करते। ठीक होने पर ही तुम्हें स्कूल आना चाहिए था।'

'नहीं मैडम, ठीक है। डॉक्टर ने कहा कि चले जाओ इसीलिए आया हूं।'

सब बच्चों ने उसे बड़े प्यार से बैठाया। कई महीने लगे, यश के उस झुलसी हुई त्वचा को ठीक होने में और उसके बाद उसके चेहरे से उस दाग को जाने में भी काफी समय लगा। उसके माता पिता ने उसे समुचित चिकित्सा दिलाई और इसका सारा श्रेय जाता है, उन्नत व आधुनिक चिकित्सा पद्धति व चिकित्सकों को, जो कठोर परिश्रम करके इन पद्धतियों की खोज एवं अध्ययन करते हैं।

कुछ घटनाएं मन को विचलित कर जाती हैं, साथ ही कोई सबक भी देकर जाती हैं। इस घटना को बहुत साल बीत गए और यश भी बहुत बड़ा हो गया होगा। प्रत्येक दीपावली को मुझे वह याद आता है। तब से आज तक मैं हर साल दीपावली पर बच्चों को और अधिक सावधान रहने के निर्देश देती हूं। आप सभी की दीपावली भी सदा सुरक्षित व जगमगाती रहे, मेरी यही शुभकामना है ।

***

डॉ. टी. महादेव राव
विशाखापट्टनम-आंध्र प्रदेश—मो.9394290204

मुखौटे

आज का युग 'देखने में कुछ और-करे धरे कछु और' का हो गया है। सीधे सादे और भोले लगने वाले भी भरोसेमंद नहीं रहे। कलयुग है भाई। एक चेहरे पे कई चेहरे लगा लेते हैं लोग और अपना काम निकलवा लेते हैं लोग। सरकारी अधिकारी से काम निकलवाना हो तो मुखौटा दीन-हीन का लगा लेते हैं, गरीबी और अभावग्रस्त का ढोंग रचाते हैं। उधर बाबू और अधिकारी सभी अपने चेहरे पर दीनबंधु का चेहरा लगाकर जताते हैं मानो कि कम रिश्वत लेकर वे देश का बड़ा उपकार रहे हैं।

मेरा पड़ोसी बड़ा मुखौटेबाज़ है। उसे मेरी गाड़ी की ज़रूरत पड़ती है तो भागा भागा यूं आता है जैसे पहाड़ टूट पडा है। एक घण्टे के लिए गाड़ी मांगकर दिन भर गायब और खाली टंकी करके गाड़ी मेरे सुपुर्द कर, विवशता और बेचारगी का मुखौटा लगाए धीरे से खिसक जाता है। यही शख्स जब मेरा टॉमी उसके आँगन के आगे भौंकता तो खूंखार चेहरा बनाकर कुत्ते से भी ऊंची आवाज़ में भौंकता और मेरा कुत्ता सीनियर कुत्ते को यथायोग्य सम्मान देते हुए चुपके से अंदर आ जाता है।

जब उसके रिश्तेदार आते हैं तो सज्जनता ओढ़े अनुरोध करता कि घर के पिछवाड़े में शाम को बैठने के लिए जो दीवान बिछा रखी है, उसे दो दिन के लिए दे दूं। उस मुखौटे को देखकर लगता है कि अगर दीवान ना दिया तो शायद मर जाएगा। सो मैं मना नहीं कर पाता। यह अलग बात है कि जब दीवान वापस मिलता है कहीं न कहीं से हर पुर्जा ढीला मिलता। फिर मुझे ही बढ़ई को बुलाकर अपनी जेब ढीली करनी पड़ती है।

मुखौटे लगे चेहरे से लोग यूं जीते हैं जैसे प्यास लगे तो हम पानी पीते हैं। चेहरे पर टंगा मुखौटा आपके भीतर के रावण को छिपा देता है और बनावटी राम को दिखाकर काम चला लेता है। लोग कहते हैं कि वर्तमान युग विज्ञान और तकनीक का युग है, पर मेरा मानना है कि यह मुखौटों का युग है और लोग मौके के अनुरूप मुखौटे बदलना यानी चेहरे पर चेहरा चढ़ाना खूब अच्छी तरह जानते हैं।

आपके बॉस को जब आपसे ज़्यादा काम कराना होता है तो बुद्ध का शांत, मंद स्मित वाला मुखौटा लगाकर आपको बुलवाता है। लगता है कि अभी ध्यान या तपस्या करके आया है। आवाज़ पर भी मृदु मधुर शांति का लेप चढ़ाये प्यार से यूं बोलता है जैसे आप पर फूल बरस रहे हों। और आप न चाहते हुये भी उस काम को पूरा करने का बीड़ा उठा लेते हैं। बिना ओवर टाइम छह सात घण्टे काम कर जुटे रहते हैं। अगले दिन जब आप छुट्टी मांगने जाते हैं तो यही बुद्ध के मुखौटे वाला शख्स उग्र नृसिंहावतार का मुखौटा लगाए आपकी छुट्टी को नामंजूर कर देता है। यह अलग बात है कि दो दिन बाद आप अपने किसी रिश्तेदार की झूठी बीमारी से त्रस्त व्यक्ति का मुखौटा लगाकर छुट्टी हासिल कर लेते हैं।

एक बार मेरी गाड़ी का एक्सीडेंट हुआ। एक शराबी रॉन्ग रूट में आकर बाईक से मेरी कार को ठोंक दिया। दोनों थाने पहुंचे। वह शराबी उसी थाने के सिपाही का साला था। फिर क्या था उस सिपाही ने यमराज का मुखौटा डाला चेहरे पर और लगा मेरी क्लास लेने। सही होने के बावजूद मुझे दोषी ठहराया गया। जब बात सिर

से ऊपर हो गई तो मैंने सज्जनता का मुखौटा उतारकर दंभी और पहुँच वाले व्यक्ति का चेहरा ओढा और अपने पत्रकार मित्र को फोन लगाया। सारा वाकया बयान किया। पत्रकार मित्र ने थाने का नंबर लिया और थानेदार को ऐसे हडकाया जैसे कि वह बीबीसी का वरिष्ठतम पत्रकार हो। अगले दिन पेपर में पूरी सही रिपोर्ट उनके फोटो समेत छपने की धमकी पर थानेदार साहब सज्जन का मुखौटा लगाए, मुझे गाड़ी सहित घर पहुंचाकर गए और धन्यवाद दिया अलग से।

प्रश्न यह उठता है कि क्या बिना मुखौटे के जीना संभव है? मेरा उत्तर होगा बिलकुल नहीं। सुबह आपको अखबार देने वाले से लेकर रात में आपके अपार्टमेंट के चौकीदार तक सारे लोग मुखौटा ओढ़े अपना काम करने का एहसास कराते हैं। दूधवाला, सब्जीवाला, इलेक्ट्रीशियन, प्लंबर, मैकेनिक, पोस्टमेन, कूरियरवाला, चपरासी, आपका पड़ोसी, बॉस, दफ्तर के साथी, तथाकथित दोस्त सभी मुखौटे में जीते हैं कि हमें उनका असली चेहरे को, उनके असली अस्तित्व वाले व्यक्तित्व को भी अपनी याददाश्त पर ज़ोर डालकर याद करने की विफल कोशिश करनी होती है।

अब ऐसा माहौल हो गया है कि आदमी के असली चेहरे को पहचानना मुश्किल हो गया है। चेहरे दिखते कुछ और हैं, और उनमें निहित भावना कुछ और होती है। मुझे लगता है साँसों की तरह चेहरे पर अनगिनत मुखौटे लगे होते हैं, जो अवसर पाकर अपना फन दिखाते हैं, आपको नए नए हुनर से परिचित कराते हैं। मेरे एक मित्र हैं जो इधर साहित्य और समाज से उधर राजनीति और राकेट युग तक अच्छा खासा दखल रखते हैं। अपनी बीवी के पास यूं चेहरा बनाते हैं, जैसे उन जैसा भोला भाला और नादान बंदा तो दुनियाँ में है ही नहीं। पत्नी भी ठीक उन्हें इसके विपरीत पाती है, पर उन्हें भोला मानने के मुगालते में जीने दे रहीं हैं। मित्र के सारे संबंधों की चाहे वे वैध हों या अवैध जानकारी रखती हैं और समय समय पर घर में इनकी बखिया उधेड़ती हैं। दोनों अलग अलग मुखौटे लगाकर पिछले पच्चीस वर्षों से तथाकथित सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मुखौटे के कई फायदे हैं। आप अपने आप को मुसीबतों से बचाने में कामयाब हो जाते हैं। नई मुसीबतों से आपका पाला कम पड़ सकता है। समय देखकर मुखौटे बदलने वाला ही आज सफल है। वरना आप कितने भी आप महान हों, ज्ञानी हों, ईमानदार हों, कर्तव्यनिष्ठ हों धरे के धरे रह जाएँगे और मुखौटा ओढ़े लल्लू -पंजू आगे निकल बढ़ जाएँगे और आप टापते रह जाएँगे।

नेताओं के स्पेशल मुखौटे होते हैं! अलग अलग समय के लिए अलग-अलग मुखौटे। जब वोट लेने जाना हो तो हल्का मुखौटा, गधे को पापा और गधी को मम्मी कहते मुखौटे, प्यार, गुस्सा, डर, धन हर प्रकार का सिक्का चलाता हुआ। जीत जाने पर एक और भारी मुखौटा चेहरे पर फिट हो जाता है। बहुत सारे मुखौटे नेताओं के लिए ही होते हैं ! वक्त की नज़ाकत को देखकर मुखौटा बदलने पर ही जीवन भर कुर्सी दामन नहीं छोडेगी और लक्ष्मी मुख नही मोडेगी !

ग्राहकों को धोखा देने के लिए दुकानदार का अजीब सा चेहरा दिखाता मुखौटा बहुत ही कारगर होता है। सारे मुखौटों का समयानुसार सदुपयोग करने से कोई कठिनाई नहीं होगी !

एक-एक करके जीवन में अवसर के हिसाब से अपना मन पसन्द मुखौटा रखें! सबके अपने अपने मुखौटे होते हैं। आफिसर हैं या चपरासी, मालिक हैं या नौकर, मास्टर हैं या विद्यार्थी, प्रोफेसर हैं या स्टूडेंट, लडका हैं या लडकी, सर्विस करते हैं या बिजनेस मतलब यह कि हर प्रकार के तथा हर किस्म के मुखौटे आजकल लोगों में अंदरूनी तौर पर अलग अलग अवसरों के लिए, माहौल के लिए बने बनाए हैं।

आलम यह है कि इन मुखौटों की वजह से आदमी का, इंसान का असली चेहरा न जाने कहाँ गुम हो गया है।

सुरेश चंद शर्मा
फरीदाबाद, हरियाणा — मोबाइल 9953091619

कुकुर उत्कर्ष काल

भारतीय शास्त्रीय काल गणना के अनुसार वर्तमान में यूँ तो कलियुग का प्रथम चरण चल रहा है तथापि उसके लक्षणों तथा आधुनिक दौर में हो रहे त्वरित परिवर्तन इसके अंतिम चरण होने का संकेत दे रहे हैं। सनातन संस्कृति के पांच गकार में से एक गौ माता का पालन, उसके अमृत तुल्य दूध का सेवन अब 'आउट ऑफ़ फैशन' हो चला है और अधिकांश घरों में उसका स्थान अब श्वान अर्थात कुकुर, कुत्ता अजी नहीं, डौगी ने ले लिया है। गौ पालन के बारे में बात करो तो प्रायः लोग मुंह बिचकाकर कहते हैं कि गाय गोबर करती है और घर का सारा परिवेश ही गंदा कर देती है जबकि कुकुर गोबर नहीं बल्कि कोई सुगन्धित वस्तु अर्थात मल का त्याग करता है जिसके लिए पार्क अथवा गाँव / शहर की गलियाँ उपलब्ध हैं ही। वह घर की सुरक्षा के लिए अत्यंत उपयोगी है। उसकी स्वामी भक्ति का कोई मुकाबला नहीं है। भले ही वह दूध नहीं देता लेकिन दूध तो बाज़ार में पैकेट में खूब मिल रहा है। कोई कमी हो तो बताओ?

अपने जीवनकाल में मैंने किसी भी जानवर के प्रति समाज के किसी एक नहीं बल्कि अधिकांश वर्गों द्वारा इतना प्रेम, विशेष आदर, सत्कार पहले कभी नहीं देखा जो आजकल कुकुर महोदय के लिए दृष्टिगोचर हो रहा है। आप सोच रहे होंगे मैं इनके लिए महोदय आदि शब्दों का प्रयोग क्यों कर रहा हूँ तो कारण आप भी समझ लें। आधुनिक इंसानों ने शूद्र की तरह 'कुत्ते' को भी एक शर्मनाक शब्द मान लिया है। ऐसा लगता है जैसे; 'कुत्ता' किसी जानवर को नहीं कहते और यह सम्बोधन सिर्फ एक गाली है, यानी नए प्रोटोकॉल के अनुसार अब कुत्ते को कुत्ता बोलना भी घोर आपत्तिजनक एवं अपमानजनक हो गया है। तमिलनाडु में इसी बात पर हुई लड़ाई में एक शख्स की हत्या कर दी गई। अखबारों में प्रकाशित घटना के अनुसार मृतक ने पड़ोसी के कुत्ते को उसके 'नाम' से बुलाने के बजाए कुत्ता कह दिया था, घटना डिंडिगुल में थाडिकोम्बु थाना क्षेत्र की है। मृतक की पहचान 65 साल के रायप्पन के तौर पर हुई है जो एक किसान था। आरोपियों में निर्मला फातमा रानी और उसके दो बेटे विन्सेंट-डैनियल शामिल हैं। हैरान कर देने वाली दूसरी घटना मुंबई से सामने आई है। एक शख्स ने उस वक्त एक ऑटो रिक्शा ड्राइवर की बेरहमी से पिटाई कर दी, जब ड्राइवर ने उसके कुत्ते को 'कुत्ता' बोल दिया था। घटना मुंबई के भांडुप इलाके की है। पालतू कुत्ते के मालिक ने ऑटो रिक्शा ड्राइवर को इतना पीटा कि उसके चेहरे पर जख्म के निशान आ गए। आरोपी की पहचान राहुल भोसले के रूप में हुई। पुलिस के अनुसार, आरोपी ने ड्राइवर को जोर देकर कहा कि, उसके पालतू कुत्ते को उसके नाम 'लुसी' से पुकारे किन्तु वह नहीं माना, जिसकी सजा उसे भुगतनी पड़ी।

हाल ही में मेरा अपने एक रिश्तेदार के घर जाना हुआ तो परिवार के सभी सदस्यों से शिष्टाचार भेंट हुई,तभी एक सांड जैसी सेहत वाला हृष्ट-पुष्ट कुत्ता भी

मुझसे मिलवाया गया। 'हेलो' कहने के लिए उसने अपना पंजा ऊपर किया तो था लेकिन शायद मुझे ही उससे विधिवत भेंट करना नहीं आता था। मुझे असहज होते देखकर उन्होंने उसका परिचय करवाया और बाकायदा उसका कोई अंग्रेजी नाम भी मुझे बताया जो दुर्भाग्य से मुझे याद नहीं रहा अन्यथा आपको भी बताता। हाँ, हिंदी का कोई रामबीर या कालू जैसा कोई नाम होता तो मुझे जरूर याद रह जाता किन्तु क्या करूं, आजकल याददाश्त भी उतना साथ कहाँ दे रही है ! बहरहाल, एक ख़ास बात जो मुझे महसूस हुई वह थी कि उसकी सेहत घर के सभी सदस्यों से बेहतर थी। उसकी चाल किसी राजा की तरह थी और घर के बड़े-बूढों की कमजोर सेहत को देखकर लग रहा था कि परिवार का मुखिया अपने माता-पिता से भी कहीं बेहतर ढंग से उसकी परवरिश बेहद गम्भीरता और लगन से कर रहा है।

परिचय के पश्चात उसके गुणों का बखान आरम्भ हुआ 'यह बहुत समझदार है, हमारी हर बात को समझता है और उस पर रिएक्ट करता है '। लगभग पांच मिनट तक लगातार उसकी प्रशंसा इतनी अधिक की गई कि एक बार तो मेरा मन हुआ कि कह दूं 'भाई, आप बड़े भाग्यवान हैं। मुझे तो लगता है कि कुत्ते के रूप में विश्व की किसी महान हस्ती का पृथ्वी पर और वह भी आपके घर में अवतरण हुआ है। यह तो हम ही अभागे हैं जो ऐसे उच्च कोटि के इस प्राणी की सेवा से वंचित हैं।' जितनी देर मैं वहां रहा सहज होने का नाटक करता रहा क्योंकि उस 'समझदार' कुत्ते ने एक दो बार तो मेरी बाजू के एक हिस्से को ही अपने जबड़े में इस तरह दबाया कि किंचित उसकी रक्त पिपासा अत्यंत तीव्र हो उठी हो और मेरी बाजू से ही उसने उसे शांत करने का मन बना लिया था किन्तु उसके मालिक का यह सतत उच्चारण मुझे दिलासा देता रहा 'आप डरें नहीं, ये बिलकुल नहीं काटेगा। 'उसकी बात ठीक साबित हुई भी, उसने ऐसा करके केवल अपने दांतों की खुजली ही मिटाई, वास्तव में काटा नहीं ।

अंततः कुकुर प्रेमियों से क्षमा-याचना के साथ यह सुझाव देना चाहूंगा कि यदि आप किसी परिचित मित्र, रिश्तेदार अथवा अनजान व्यक्ति से उसके आवास पर मिलने जा रहें हैं तो संकोच छोडकर द्वार पर ही गृहस्वामी से आदर भाव से उनके ------ का नाम पता करें और नाम पता चलने के बाद इस तरह कहें क्या आपके वो ------ आंगन में स्वतंत्र घूम रहे हैं अथवा उन्हें ससम्मान बांधकर रखा गया है ? ऐसा करके आप कुकुर महाशय को व्यक्तिवाचक संज्ञा के स्थान पर जातिवाचक संज्ञा से पुकारने के कारण सम्भावित मार–पिटाई से तो बचेंगे ही,साथ ही, अतिथि के तौर पर समुचित सम्मान भी प्राप्त कर पाएँगे ।

***

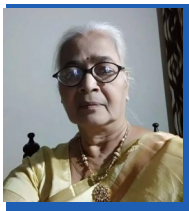

सुधा गोयल
कृष्णानगर, बुलंदशहर– उत्तर प्रदेश
मोबाइल नंबर-9917869962

सलोनी का निर्णय

स्कूल से लौटकर सलोनी ने अपना बैग अलमारी में रखा पर उसे दादी की आवाज सुनाई नहीं दी। कमरे में पैर रखते ही दादी कहती-"आ गई बिटिया" और सलोनी दादी के पास उनके पलंग पर बैठकर जूते मोजे उतारती, चोटी खोलती और इस बीच स्कूल की बातें भी दादी को बताती। दादी लड़ियातीं- "बिटिया पहले कपड़े बदलकर हाथ मुंह धो लो, फिर बताना।" सलोनी ऐसा ही करती। पर आज उसे दादी दिखाई नहीं दीं। उसने दादी! दादी!! आवाज लगाई। फिर मम्मी से जाकर पूछा-"मम्मी, दादी कहां हैं, दिखाई नहीं दे रही।?"

"अरे हां,मैं बताना भूल गयी। वे अपने एक रिश्तेदार के यहां रहने चली गई हैं। जब उनका मन भर जाएगा, आ जाएंगी।"

"कौन रिश्तेदार मम्मी? मैंने तो कभी दादी के किसी रिश्तेदार को नहीं देखा। बस बड़ी बुआ मां, अपनी बुआ जी और चाचाजी को देखा है। आप मुझे उनका फोन नम्बर दो। मैं उनसे पूछती हूं कि मुझे बिना बताए क्यों चली गई और कब तक लौटेंगी?"

"मेरे पास उनका नम्बर नहीं है। कितनी बड़ी गलती कर दी कि नम्बर ही नहीं लिया। खैर, अभी तुम खाना का लो। जब तुम्हारे पापा आ जाएंगे उन्हें पूछ लेना। वे शायद जानते हों।" कहकर मम्मी ने सलोनी की खाने की प्लेट लगा दी। सलोनी पहला कौर दादी के हाथ से खाती थी। दादी पोती दोनों साथ खातीं थी। सलोनी ने दो कौर खाकर पर प्लेट खिसका दी। वह जाकर पलंग पर लेट गई। यह कमरा दादी पोती दोनों का था। वह तकिए पर सिर रख कर रोने लगी। तभी उसे ख्याल आया कि पापा से दादी का नंबर ले ले। उसने पापा को फोन लगाया-"पापा, दादी मां का नंबर बोलो।"

"अभी मैं मीटिंग में हूं। शाम को बात करा दूंगा।"

सलोनी सो गयी। मम्मी ने फोन से पापा को और पापा ने दादी को बता दिया कि सलोनी फोन करें तो कह देना थोड़े दिन बाद आऊंगी। शाम को दादी से बात करके सलोनी को थोड़ी तसल्ली हुई। रविवार को सलोनी ने जिद पकड़ ली कि सब दादी से मिलने चलो। मम्मी पापा ने खूब समझाया कि दादी को थोड़े दिन रहने दो। कभी कभी अपने पुराने लोगों के साथ रहने का भी मन करता है।

"ठीक है, हम कौन लेने जा रहे हैं। मिलने ही तो जा रहे हैं। दादी के रिश्तेदारों से भी मिल लूंगी।

सब तैयार होकर पंहुचे। दादी एक बड़े से हॉल में सबका इंतजार कर रही थीं। सलोनी दादी से लिपट कर रोने लगी। आप मुझे बिना बताए चली आई। मेरा आपके बिना मन नहीं

लगता। अब मैं आपके पास यहीं रहूंगी।
"तू यहां रहकर क्या करेगी? यहां तेरा कोई संगी साथी भी नहीं है। फिर वहां तेरा स्कूल भी है। जब तेरा मन करे फोन पर बात कर लेना।"
"दादी, आपके रिश्तेदार कहां हैं?"
"अभी बुलाती हूं"-दादी अंदर जाकर बुला लाईं।
"बिटिया, ये मेरे भैया भाभी हैं" सलोनी ने प्रणाम कर पूछा-"आप लोग कभी हमारे घर नहीं आए। दादी मां काफी दिन आपके साथ रह लीं। अब अपने साथ ले जाएं।"
"अभी कुछ ही दिन हुए हैं। जब कहेंगी छोड़ आएंगे।"

"पर दादी के बिना मेरा मन नहीं लगता।" सलोनी फिर रोने लगी। पापा ने डांटा-"सलोनी, ये क्या बचपना है। तुम बहुत जिद्दी होती जा रही हो। बहुत देर हो गई है। अब घर चलते हैं।"

दादी ने सलोनी को खूब प्यार किया। उनकी भी आंखें भर आईं। वे सब लौट गए। दादी निःश्वास खींच कर रह गई। वक्त खिसकता रहा। सलोनी ने दादी के बिना जीना सीख लिया। जब बहुत मन करता पापा मम्मी के साथ मिलने चली जाती।

एक बार पंद्रह अगस्त पर सलोनी के स्कूल से वृद्धाश्रम जाकर वृद्धों को फल मिठाई बांटने का कार्यक्रम बना। सलोनी भी साथ थी। बस जैसे ही आश्रम के बाहर रुकी -सलोनी चौंक उठी। यहां तो दादी रहतीं हैं। ये उनके भैया भाभी का घर है। जरुर टीचर से गलती हुई है। लेकिन उसने किसी से कुछ नहीं कहा। वह भी सबके साथ साथ चल रही थी। सभी वृद्ध वृद्धाएं एक बड़े हाल में पंक्ति में खड़े थे। बच्चे उन्हें फल मिठाई दे रहे हैं। सलोनी भी दे रही थी। एक वृद्धा के पास जाकर रुक गई।

"दादी आप?यह तो आपके भैया भाभी का घर है। फिर टीचर इसे वृद्धाश्रम क्यों कह रही है?"
"बिटिया, यह आश्रम मेरे भाई भाभी का ही है"-सुनकर सलोनी के ज्ञान चक्षु खुल गये।
"फिर आप लाइन में क्यो हो? आप सबने मुझसे झूठ बोला। अब मैं भी आपके साथ यहीं रहूंगी। जो बेटा-बहू आपको साथ नहीं रख सकते मैं ऐसे मां बाप के साथ नहीं रह सकती। उन्होंने आपको त्यागा। मैं आज सबके सामने उनका त्याग करती हूं।

और सलोनी दादी से लिपट गई।

***

योगेंद्र कुमार सक्सेना
ग्रेटर नोएडा-गौतमबुद्ध नगर-उत्तर प्रदेश मो. 9871395282

फलों की टोकरी

'जल्दी करो आगरा से मेरठ 4 घंटे से कम का रास्ता नहीं है। पहुंचते-पहुंचते शाम हो जाएगी। फिर वहां रविंद्र भी इंतजार करते होंगे। देर से पहुंचना मुझे जरा अच्छा नहीं लगता। सगाई की रस्म और रात का खाना खाने के बाद वापस भी तो आना है।' राधाकांत ने अपनी पत्नी नीलम से उत्कंठा भरे स्वर में कहा।

'आपको तो बस जल्दी मची रहती है। सभी को तैयार होकर बस में बैठने को कह दिया है। दिन का खाना बस में रखवा दिया है। बच्चों ने जरुरत का सामान भी रखवा दिया है। सभी रिश्तेदार अब तक बस में बैठ गए होंगे। शैशव और सत्यम दोनों को अपनी कार बस के साथ ही चलाते रहने के लिए कह दिया है। उन्हें पानी आदि की व्यवस्था के बारे में भी बता दिया है। बस महाराज और महाराजिन को विदा करना बाकी है। नाश्ता भी सभी न कहीं लिया है। बस समेटा समाटी कर लूं, फिर मैं भी चलती हूं। घर से जाते समय 20 काम होते हैं। आपको से क्या, बस जल्दी मचाते रहते हो। अभी आती हूं। ' अपने दुलार भरे उल्हाने के साथ नीलम ने कहा।

'अरे, बस को तो मैंने रवाना भी कर दिया है। शैशव और गौतम भी निकल चुके हैं। बस हम ही बचे हैं। तुम आ जाओ तो हम भी निकल चलें।'

'ठीक है बस 10 मिनट में आती हूं।' नीलम ने कहा और अपना काम निपट कर वह भी बाहर आ गई।

बड़े दिनों के बाद राधाकांत के घर में खुशियां आने वाली थी। अपने बड़े बेटे शैशव का विवाह उन्होंने आगरा के एक सम्मानित परिवार में तय कर दिया था। शैशव अब इंजीनियर हो गया था और उसकी नौकरी भी एक मल्टीनेशनल कंपनी में लग गई थी। रविंद्र की पुत्री छवि जिससे शैशव का विवाह होना निश्चित हुआ था, वह भी एमबीबीएस थी। रविंद्र भी राज्य की ट्रेजरी सर्विस में निदेशक के पद से सेवानिवृत हुए थे और उनका भरा पूरा परिवार था। राधाकांत भी प्रदेश सरकार में उच्च पद से सेवानिवृत हुए थे। उनका छोटा बेटा सत्यम भी एमबीए कर चुका था। राधाकांत की बड़ी इच्छा थी कि शैशव का विवाह हो जाए तो वह जल्दी ही सत्यम की भी शादी कर दें। उनके कोई बेटी नहीं थी इस कारण छवि को घर लाने के लिए वह बेहद उत्सुक थे। अभी तो शैशव की सगाई ही हो रही थी फिर भी राधाकांत को हर बात की बहुत जल्दी मची थी।

'मिठाई के डिब्बे और शगुन के समान का सूटकेस तो अपनी गाड़ी में रख लिया है?' नीलम ने पूछा

'हां भाई, सब रख लिया है तुम तो बाहर निकलो। ' राधाकांत ने उत्तर दिया

'और फलों की टोकरी का क्या किया?' नीलम ने पूछा

'उसके लिए महेंद्र को कह दिया है। वह आगरा में ही है। ताजे फलों की टोकरी बनवा लेगा। यहां से लाने ले जाने का झंझट है। फिर महेंद्र से अगर कोई काम नहीं कहा तो वह बुरा न मान जाए। हमेशा कहता है कि उसे किसी काम के लिए नहीं कहते।' राधाकांत ने उत्तर

दिया।

नीलम ने सहमति में सिर हिलाया। दोनों कार में बैठ गए। अब उनकी कार भी आगरा की सड़क पर दौड़ने लगी। महेंद्र, राधाकांत की मौसी का बेटा था। मौसाजी की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी इसी के चलते महेंद्र की पढ़ाई से लेकर शादी तक अनेक बार आर्थिक मदद उन्होंने की थी। महेंद्र की शादी में सभी परिजनों के खाने पीने की व्यवस्था राधाकांत ने ही की थी। इसके अतिरिक्त महेंद्र पर राधाकांत के अनेक एहसान थे।

'सुनती हो, मैंने फलों की टोकरी के लिए महेंद्र को कह तो दिया है परंतु मैं उससे यह कैसे पूछ पाऊंगा कि वह टोकरी कितने मूल्य की है? मेरी मर्यादा तो कहती है कि उसे जरुर पूछ लूं परंतु डर भी लगता है कि कहीं वह बुरा न मान जाए। यह भी कह सकता है कि शैशव उसके भी तो बेटे के समान है, क्या वह एक फलों की टोकरी की व्यवस्था उसकी सगाई पर नहीं कर सकता? समझ में नहीं आ रहा क्या करूं।' असमंजस में पड़े राधाकांत ने कार में बैठे-बैठे नीलम से कहा।

'मैं क्या कह सकती हूं। महेंद्र भैया को बुरा लग सकता है। फिर भी अच्छा होगा कि उनसे पूछ जरूर लेना, साथ ही उन्हें मना भी लेना यह तो औपचारिकतावश पूछ लिया था।' नीलम ने शांत भाव से कहा।

'ऐसा नहीं हो सकता कि तुम पूछ लो? मुझे तो बड़ा संकोच हो रहा है।'

'क्या बच्चों जैसी बात करते हो। अरे, महेंद्र भैया से आपने कहा है, आपके छोटे भाई हैं। संकोच कैसा, पूछ ही तो रहे हैं। इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है? कह तो रही हूं कि बाद में मना भी लेना।' नीलम ने कहा।

इसी विचार में डूबे राधाकांत आगरा उस होटल में आ पहुंचे जहां रविंद्र ने सगाई की व्यवस्था की थी। 5 बज चुके थे। यह नवंबर की शाम थी इसलिए अब अंधेरा भी दस्तक देने लगा था। रविंद्र ने परिवार का गर्म जोशी से स्वागत किया। जलपान के बाद अब सगाई के लिए समान स्टेज पर लगाने की व्यवस्था होनी थी। राधाकांत व नीलम अपने कमरे में गए और सारा सामान व्यवस्थित करने लगे। तभी महेंद्र फलों की टोकरी लेकर आ गया। बहुत खूबसूरती से इस टोकरी को सजाया गया था, 'मैंने कह दिया था सबसे सुंदर बननी चाहिए यह फलों की टोकरी। आपको कैसी लगी भाभी जी?' महेंद्र ने नीलम को देखकर कहा। 'सुंदर है भैया, आपने बनवाई है, कोई कमी कैसे रह सकती है। ' नीलम ने उत्तर दिया। फिर राधाकांत की ओर इशारा किया कि वह...

थूक सटकते हुए हिम्मत जुटाकर राधाकांत ने महेंद्र से पूछा 'अरे महेंद्र यह फलों की टोकरी कितने में बनी?' 'भाई साहब, वह तो ढाई हजार की कह रहा था परंतु मैंने दो ही हजार दिए।' महेंद्र ने तपाक से उत्तर दिया। हतप्रभ और अवाक राधाकांत ने अपने वॉलेट से ₹2000 निकले और महेंद्र को दे दिए। महेंद्र ने तुरंत ही उन्हें अपनी जेब में रख लिया। फटी आंखों से नीलम ने यह दृश्य देखा और फिर उसने अपनी आंखें झुका लीं। सगाई की शहनाई की आवाज अब कमरे तक आ रही थी।

***

पूनम सुभाष
कौशांबी – गाजियाबाद मो. 9999845402

लालच भली बला है

सुनंदा अपने संयुक्त परिवार के साथ स्वर्गीय पति राधेश्याम के पार्थिव शरीर के पास चुपचाप बैठकर अपने चारों बेटों के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। दो बड़े बेटे गांव पहुंच गए थे लेकिन विदेश से दोनों छोटे बेटे व्यस्तता के कारण नहीं आ सके थे। गांव के अन्य परिवार, जेठ-जेठानी, उनके बहू-बेटों, बेटी बबीता, उसके पति और बच्चों के पास होने के बावजूद उसकी आंखें कुछ प्रतीक्षा कर रही थीं।

पंडित जी दाह संस्कार के लिए जल्दी करने के अनुदेश दे रहे थे क्योंकि 2 बजे के बाद पंचक प्रभाव शुरू होने वाला था जो शवदाह के लिए अनुपयुक्त था। 12 बजे से ऊपर का समय हो चला था। बड़े बेटों को बार बार फोन किया जा रहा था। कुछ ही देर में दोनों वहां पहुंच गए उनके साथ उनकी पत्नियां तो थीं पर बच्चे नही थे। पंडित जी ने पूछा "इनके पोतों को नहीं लाए?" पर अंतत: स्वर्गीय राधेश्याम दो बेटों और दो भतीजों के कांधों पर सवार होकर अंतिम यात्रा पर रवाना हो गए।

दाह संस्कार के बाद सभी घाट से लौटे तो सुनंदा के जेठ बंशीधर अपने भतीजों से पूछ उठे,"तुम्हारे बच्चे क्यों नहीं आए? क्या उन्हें दादाजी के चले जाने का कोई गम नहीं है?" बडा अनंत खिसियाकर बोला "ताऊ जी बच्चों को गांव अच्छा नहीं लगता, सो हमने मजबूर नहीं किया।" "शाबाश बेटा, तुम्हारी औलाद भी तुम्हारे ही जैसी तो होगी न। कोई बात नही वक्त तुम्हारा भी आना है।" आकाश व अनंत चुपचाप सिर झुकाकर खड़े रहे।

पूरी बिरादरी के सामने पंडित जी ने सारी रस्मों और तेरहवीं की घोषणा की तो अनंत और आकाश तो सकते में आ गए कि पूरे 13 दिन गांव के लोगों की सवालिया नज़रें, ताऊ जी के व्यंग्यबाण लगातार सहने पड़ेंगें। इसके सिवा कोई चारा भी नहीं था और फिर गोपाल मामा जिनके वह बहुत चहेते थे, ने बता दिया था कि स्वर्गीय राधेश्याम जी की वसीयत भी तेरहवीं के बाद ही खोली जाएगी।

उधर सुनंदा के पास सिर्फ ताऊ जी की बेटी बबीता जिसे सब भाईयों के बीच की होने के कारण बिचकी पुकारा जाता था, बैठी थी! ताऊ जी की बहुएं पूरी बिरादरी के भोजन व्यवस्था में लगी थी । सुनंदा की अपनी बहुएं दरी के कोने पर बैठ आने जाने वालों को हाथ जोड़कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान रही थीं।

बेटों के पास आते ही सुनंदा सिसकारी भरकर रोने लगी। अनंत ने कहा "मां क्यों परेशान हो रही हो पिताजी को कैंसर जैसी बीमारी थी। समझो उनकी तो मुक्ति ही हुई है। सुनंदा का मन हुआ चिल्लाकर पूछे कि उनकी बीमारी के लिए तुम बेटों ने क्या किया, अंत समय तक तुम सबको याद करते रहे। पर रिश्तेदारों का ध्यान करते हुए दबी आवाज में बोली, "बेटा आप लोगों ने तो उनको तन से ज्यादा मन का दर्द दिया, कभी उनका हाल तक नहीं पूछा। आज यदि तुम्हारे ताऊ जी ने अपने हिस्से की जमीन गिरवी रखकर तुम चारों को नहीं पढ़ाया होता तो तुम हमारे पास ही होते। उन्होंने तुम्हें शहर भेजा और तो और दोनों छोटों को तो विदेश तक भेजा।" आकाश ने कहा "मां अब कौन सी जमीन गिरवी पड़ी है सब अपने पास ही तो है"
"वो तो तुम्हारे ताऊ जी के बेटों की मेहनत और तुम्हारे पिताजी की भविष्य निधि की राशि से हो गया वरना हमारे पास क्या रह जाता?"

अनंत व आकाश इस जिरह के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। रात होते होते उन्होंने अजय और अभय को भी अमेरीका में फोन लगाकर तेरहवीं पर वसीयत खुलने की बात बताकर बुला लिया। सुनंदा ने यह सब अपनी आंखों से देखा और कानों से सुना। उसकी बर्दाश्त से बाहर हो चला था बिचकी के सीने से लगकर रो पड़ी।

तेरहवीं से दो दिन पहले अजय और अभय भी गांव पहुंच गए। छोटे भाइयों को देखकर बिचकी उनसे लिपटकर रोने लगी किंतु उनकी बेरुखी देखकर पीछे हट गई। उनमें तो बडे भाइयों वाली औपचारिकता भी नहीं थी।

तेरहवीं का दिन आ पहुंचा रस्म पगड़ी के बाद चारों भाई, गोपाल मामा, जो वकील भी थे, के इर्द-गिर्द वसीयत सुनने को बेताब थे। गोपाल मामा ने ताऊजी के

परिवार के सभी सदस्यों, सुनंदा और उसके बेटे बहुओं को बुला भेजा। उन्होंने बताया कि राधेश्याम जी को लगने लगा था वह नहीं बचेंगे इसलिए यह वसीयत उन्होंने पिछले साल ही लिख दी थी। वसीयत के मुताबिक दिवंगत राधेश्याम जी ने अपने खेतों की जमीन बड़े भाई बंशीधर जी के दोनों बेटों के नाम कर दी थी। पूर्वजों द्वारा छोड़ी गई हवेली के पीछे की जमीन जिसमें कभी गाय-बैल बांधे जाते थे, को पक्का करवा कर तीन कमरों का अच्छा मकान बनवा दिया था, उसे बिचकी के नाम कर दिया था। हवेली की मालकिन सुनंदा ही रहेगी और सुनंदा के बाद चारों बेटे उसे बेचकर अपना हिस्सा ले सकते थे। अनंत, आकाश, अभय और अजय को तो मानो काटो तो खून नहीं । सबके मुंह पर ताला लग गया था।

शाम को सुनंदा से अकेले में आकाश ने कहा "लगता है पिताजी को हमसे जरा भी लगाव नहीं था। सब कुछ ताऊ के बच्चों के लिए, हमारे लिए क्या? अभय भी कहने लगा और यह बिचकी शुरू से लालची है। राखी, भैया दूज पर भी कैसे कैसे उपहार मांगती थी और आज तो पूरा मकान ही लूट लिया।" अनंत भी चुप नहीं रहा "मुझे तो ताऊ जी की कोई साजिश लगती है।" आकाश ने कहा "हमें तो अपना अपमान लग रहा है।"

सबकी बातें सुनकर सुनंदा फट पडी "कुछ तो शर्म करो, जरा बताना शहर में पढ़कर नाम कमाने के बाद पिता की बीमारी का कितना ध्यान रखा? चाहते तो अपने पास ले जाते, अच्छा इलाज करवाते, अरे तुमने तो कभी चार पैसे भी नहीं भेजे, कभी पूछा कितना खर्चा हो रहा है उनकी बीमारी पर?, जरा बताओ तो पिता जी को देखने कितनी बार आए? पास बैठकर हाल ही पूछ जाते, वो अंत समय तक तुम सबकी सूरत के लिए तरसते रहे। और आज जिन ताऊ जी के त्याग के कारण लाट साहब बने फिरते हो उनकी साजिश नजर आती है। रही बात बिचकी के लालच की तो उसने और उसके पति ने तुम्हारे पिता के इलाज में कोई कमी नहीं होने दी। ये सब नहीं होते तो मैं तो बिल्कुल अकेली थी यहां। तुम्हारे ताऊ और उनके बच्चों ने खर्च का सवाल भी नहीं उठाया। अगर बिचकी के बचपन के लाड प्यार को लालच बता रहे हो तो क्या इतने सालों से बहन को कोई उपहार भेजा है? "

"पर माँ... " अजय कुछ कहने ही लगा था कि सुनंदा बोली खबरदार अब कुछ न कहना। सुन लो बिचकी अगर लालची है तो तुम तो और भी दस कदम आगे हो तुम सब कौन से बाप की मैयत पर आए हो तुम भी तो वसीयत के लालच से ही यहां हो। अरे बेशर्मो, जिसे तुम लालच बता रहे हो, अगर वही लालच है तो मैं तो कहती हूं "लालच भली बला" है।

अभय चिहुंक उठा "लालच और भली बला?" इतने मे गोपाल मामा आ पहुंचे, 'ठीक कह रही है तुम्हारी मां। यह सच्चाई है कि आज तुम वसीयत के कारण ही रूके हुए हो वरना तेरहवीं तक इंतजार न करते। इसी लालच से चंद रोज पहले आ जाते तो कम से कम अपने पिता से आखिरी समय में मिल तो लेते। माता-पिता की जायदाद के लालच में भी अगर औलाद उनकी देखभाल करती है तो माता-पिता को उनका स्नेह ही दिखता है। इसलिए मैं भी यही कहूंगा कि "लालच भली बला" है।

***

डॉ. प्रभाकर जोशी
देवप्रयाग-उत्तराखंड मो. 9411144392

तख्तियाँ

गुरुजी ने भव्य आश्रम बनवाया था मगर वहाँ के हमेशा खुले रहने वाले सुख-सुविधा युक्त कक्षों में रहने से शिष्य कतराते थे। गुरुजी का एक विदेशी शिष्य काफी समय बाद स्वदेश लौटा था। आश्रम निर्माण में उसने काफी सहयोग दिया था। शिष्यों के आश्रम में नहीं रुकने का कारण जानने को वह उत्सुक था। आश्रम के मुख्य द्वार पर लिखे शब्दों ने उसका ध्यान खींचा, 'स्वयं में जैसे हो उसे स्वीकार कर ही तुम्हें वास्तविक शांति मिलेगी। ' उसके मन में इन शब्दों ने एक क्षण के लिए उथल पुथल मचा दी।

गुरु जी का साधना कक्ष आश्रम के अंत मे बना था। उस शिष्य ने हरे भरे वृक्षों से घिरे शांत आश्रम के भीतर प्रवेश किया। पक्षियों का कलरव यहाँ गूंज रहा था। ऐसे सुंदर वातावरण में शिष्य क्यों नहीं रहना चाहते, सोचता वह आगे बढ़ा। मगर उसके कदम एकाएक थम गए। मुख्य द्वार के निकट बने भव्य कक्षों के बाहर लगी तख्तियों ने उसे आश्चर्य में डाल दिया। वह एक-एक कर सभी तख्तियों को पढ़ने लगा। एक तख्ती में लिखा था असत्यवादी तो दूसरी तख्तियों में धूर्त, खुशामदी, स्वार्थी, आलसी, बड़बोला...। सभी कक्ष खुले थे मगर खाली थे। शिष्य समझ नहीं पाया कि गुरुजी ने ऐसी तख्तियों क्यों लगवायी। ऐसे उपनाम की तख्ती वाले कक्षों में आखिर कौन रहना चाहेगा।

आगे बढा तो गुरु जी के निवास के निकट बने कक्षों के बाहर शिष्यों की भीड़ लगी थी। शिष्य इन कक्षों को खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ के कक्ष भी वैसे ही थे जैसे प्रवेश द्वार के निकट बने थे। फिर इनके लिए इतनी मारामारी क्यों। उसकी दृष्टि अचानक कक्षों के बाहर लगी तख्तियों पर गयी, जिनमें लिखा था सत्यवादी, शांत, कर्मठ, आज्ञाकारी। सभी कक्षों पर ताले पड़े थे जो बिना गुरु की आज्ञा के खुल नहीं सकते थे। निष्ठावान शिष्य को ज्ञात हुआ कि शिष्यों की भीड़ हर दिन यहाँ ऐसी ही लगती है मगर अभी तक किसी के लिए यहाँ कोई कक्ष नही खुला था। हर शिष्य अपने को दूसरे शिष्य से श्रेष्ठ बताते इन कक्षों में रहने का अधिकारी मानता था। शिष्यों की भीड़ आश्रम के खुले आंगन में रहने सोने को तैयार थी मगर उन खुले कक्षों मे जाने को तैयार नही थी जहाँ बुरे उपनाम की तख्तिया लगी थी।

गुरुजी ध्यान, साधना के बाद अपने कक्ष से निकले तो शिष्यों की भीड़ उनके चरण स्पृर्श को दौड़ पड़ी। एक शिष्य ने साहस कर कहा, "गुरु जी, अपने निकट के कक्ष हमारे रहने के लिए खुलवा दीजिये।" गुरु जी ने मुस्कराते हुए शिष्य की ओर देखा। शांत भाव से कहा, "तो यहाँ आये तुम सभी लोग सत्यवादी, शांत, कर्मठ, आज्ञाकारी हो?"
शिष्यों ने एक दूसरे की ओर देखा। सभी की आँखों में सहमति थी। वह एक साथ बोले, 'जी गुरु जी, सभी आपके कहे अनुसार ही सत्यवादी, शांत, कर्मठ, आज्ञाकारी हैं। '
"अच्छा, ऐसा हैं तो कक्षों के दरवाजे स्वयं ही खुल जाने चाहिए थे। उनमें तो दिखावटी ताले भर लगे हैं। यदि तुम अपने को ऐसा मानते तो ताले खुद खोलने का प्रयास अवश्य करते। मगर तुमने ऐसा नही किया। अब तुम्हे जब पता चल ही गया है तो जाओ इन कक्षों में ताले हटाओ और इनमें रहो।

अब किसी भी शिष्य की हिम्मत ताला हटाकर इन कक्षों में जाने की नहीं हो पायी। सभी जानते थे कि वह वास्तव में ऐसे नहीं हैं जैसे यहाँ लगी तख्तियों में लिखा गया है। काफी देर असमंजस की स्थिति रहने के बाद आखिर एक शिष्य उठा और उन कक्षों की ओर चला जहाँ बुरे उपनाम की तख्तियां लगी थी। कुछ पल रुक कर वह स्वार्थी नाम की तख्ती वाले कक्ष में चला गया। एक एक सभी शिष्य गुरु जी को प्रणाम कर उठने लगे। थोड़ी देर में सभी बुरे उपनाम लगी तख्तियों वाले कक्ष भर गए। आश्रम का आंगन खाली हो गया। अपनी वास्तविकता स्वीकार करते ही सभी शिष्यों को परम शांति व आनंद का अनुभव होने लगा। उन्हें बुरे उपनाम की तख्तियों से अब कोई शिकायत नहीं थी। गुरु जी ने विदेशी शिष्य की ओर देखते कहा, आज आश्रम बनाने का मेरा उद्देश्य पूरा हो गया। झूठा चोला उतारकर यह सभी अब मेरे सच्चे शिष्य बनेंगे। सत्य को स्वीकार किये बिना मुक्ति नही मिल सकती। निष्ठावान शिष्य गुरु के चरणो में गिर गया। आश्रम में उसे पक्षियों का कलरव और तेज गूंजता हुआ लगा।

संदीप कुमार सिंह
गुलावठी, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) मो. 9456814243

बदला

पंकज वारिश में आधा भीगा हुआ दरवाजे से पत्नी को पुकारे जा रहा है, "प्रिया, प्रिया.....।" कुछ देर बाद प्रिया आई तो पंकज पूछने लगा, "कितनी देर से बुला रहा हूँ। क्या कर रही थीं?" तुनकते हुए प्रिया ने जवाब दिया, "बैठी थी।" पंकज समझ गया कि आज घर में फिर से कुछ हुआ है। उसने अपने गुस्से को काबू किया और पूछने लगा, "क्या हुआ? आज फिर से देवरानी से झगड़ा हो गया क्या?"

"क्यों? मेरे पास यही काम है क्या कि मैं उससे रोज उससे झगड़ा करती रहती हूँ।"

"फिर क्या बात है? मैं इतनी ठण्ड में वारिश में भीगकर आया हूँ। मैंने तुम्हें कई बार बुलाया भी। पहले तो तुम आई नहीं और अब आई हो तो लड़ने के मूड में हो।"

"मैं क्या करूँ? देखो मैं खाना बना रही थी। वारिश हुई, किसी ने मेरे बच्चों के कपड़े नहीं उठाए। सारे कपड़े भीग गए। कल बच्चे क्या पहनकर स्कूल जाएंगे? स्कूल का एक ही स्वेटर है।"

"कपड़े किसने नहीं उठाए?"

"मुझे क्या पता कि उस समय बाहर कौन था? मैं तो खाना बना रही थी।"

"जब तुम्हें पता ही नहीं है कि वारिश के समय बाहर कोई था या नहीं, केवल अंदाजा लगा रही हो?"

प्रिया कहने लगी कि मैंने देखा नहीं कि उस समय बाहर कौन था? लेकिन मुझे पता है कि मेरे बच्चों के कपड़े जानबूझकर नहीं उठाए गए। उस समय कमल की चाची रेखा बाहर थी। वे कभी भी मेरे बच्चों के कपड़े नहीं उठाती। पिछले रविवार को भी मेरे बच्चों के कपड़े शाम तक बाहर पड़े रह गए थे। कपड़े ओस में गीले हो गए थे।"

"तुम्हें कैसे पता है कि वारिश के समय कमल की चाची बाहर थीं। हो सकता है कि वे वहाँ पर न रही हो।"

"वारिश के समय वे बाहर नहीं थीं तो फिर उनके बच्चों के कपड़े किसने हटाए? वहीं पर मेरे बच्चों के कपड़े वारिश में भीगते रहे और उनके कपड़े हट गए। यदि मम्मी कपड़े उठाती तो सभी बच्चों के उठाती हैं। इसलिए मुझे पक्का विश्वास है कि रेखा ही बाहर थी।" पंकज ने थोड़ा प्यार से मुस्कुराते हुए पूछा,"प्रिया यदि मैं कुछ पूछूँ तो सही-सही जवाब दोगी।"

"क्या मतलब! मैं झूठ बोलती हूँ।"

"अरे! प्रिये! मैंने ऐसा कब कहा कि तुम झूठ बोलती हो।"

"अच्छा ठीक है, पूछो। मैं सही-सही जवाब दूँगी।"

"क्या तुम रेखा के बच्चों के कपड़े उठाती हो?"

"जब वह मेरे बच्चों के कपड़े नहीं उठाती तो मैं क्यों उनके बच्चों के कपड़े उठाऊँ? मैं पहले उठाती थीं। जब वह मेरे बच्चों के कपड़े छोड़कर केवल अपने बच्चों के कपड़े उठाती हैं तो मैं भी केवल अपने बच्चों के कपड़े उठाने लगी।"

"तब ठीक तो है, न तुम उनके बच्चों के कपड़े उठाओ और न वे तुम्हारे बच्चों के।"

पंकज ने फिर से प्रिया को समझाया उसने कहा प्रिया मेरी एक बात मान लो, यह समस्या सुलझ जाएगी। जब तुम अपने बच्चों के कपड़े उठाया करो तो उनके बच्चों के कपड़े फिर से उठाना शुरू कर दो। अपने लोगों के साथ शठे शाठ्यम समाचरेत् का व्यवहार नहीं करते। प्रिया ने कहा ठीक है तुम कहते हो तो मैं अब उनके बच्चों के कपड़े उठाया करूँगी।

कुछ दिनों बाद एक दिन प्रिया ने पंकज से पूछा, "अरे! आज बच्चों के कपड़ों तुमने धोए हैं क्या?"

"तुम्हें क्या लगता है, बच्चों के कपड़े मैं धो सकता हूँ?"

"मुझे तो नहीं लगता कि बच्चों के कपड़े तुमने धोए होंगे।"

"फिर किसने धोए होंगे?"

"बाहर देखो।"

प्रिया ने बाहर देखा, कपड़े रेखा धो रही थी।

यदि हम किसी को अपनी आदत के अनुसार ढालना चाहते हैं तो पहले हमें स्वयं में सुधार करना चाहिए। अपनों के लिए छोटा बनना पड़ता है। देर से ही सही व्यक्ति में बदलाव अवश्य आता है।

***

डा स्वदेश चरौरा
बुलंदशहर—उत्तर प्रदेश मो. 8860684461

एक कन्यादान ऐसा भी

संतोष आज उखड़ी-उखड़ी लग रही थी। उसकी सास उस पर लगातार गर्भ में शिशु की लिंग जांच करवाने का दबाब जो डाल रही थी। उसके न चाहने पर भी घरवाले उसको बहला फुसला कर डॉक्टर के पास ले जाने को मना लेते हैं, ताकि उसके गर्भ मे पल रहे भ्रूण की लिंग जांच कराई जा सके। वह पहले से ही दो बेटियों की मां है। बड़ी बेटी कान्वेंट में पांचवी कक्षा में पढ़ती है और छोटी बेटी को सरकारी स्कूल में पढ़ रही है। सास का कहना है कि दो बेटियों को कान्वेंट में पढ़ाना हमारी औकात से बाहर है। कोई ज्यादा आमदनी भी तो संतोष के पति धनपाल की नहीं है। केवल साइकिल के टायरों को पंचर करने की एक छोटी सी दुकान है। परिवार का गुजारा मुश्किल से हो पाता है। खुद संतोष औऱ सास भी कंपनियों से पीस लाकर काट-छांट करके कुछ आमदनी कर लेती हैं।

घर मे केवल पांच सदस्य हैं। संतोष के ससुर दो साल पहले टीबी की बीमारी से चल बसे थे। उसकी सास कमला ने कल बेटे धनपाल के सामने गर्भपात कराने की इच्छा जताई थी। विधवा मां की राय को सम्मान देने के लिए ही तो उसने हामी भर दी थी परंतु आज पूरी रात उसे नींद नहीं आई। यदि तीसरा बच्चा भी बिटिया हुई तो वह उसका गर्भपात कराए या न कराए इसी कशमश में रात भर ताने बाने बुनता रहा और सुबह हो गई।

अचानक कमला--"संतोष जल्दी नहाकर तैयार हो जाओ, हमने डॉक्टर नायर से ग्यारह बजे का समय ले रखा है। आज रविवार है। दोनों बेटियों की छुट्टी है इन्हें साथ ही ले चलो आजकल बेटियों को किसी के पास छोड़कर जाने का समय भी नहीं है।"

संतोष-"जी मांजी पररर----

कमला-"पर क्या? यदि तीसरी भी बेटी ही आ गई तो हम तो मारे जाएंगे, मेरा बेटा कैसे पूरा कर पाएगा इनका खर्चा? मुझे तो यही चिंता खाए जा रही है। धनपाल जल्दी निकलो-समय हो गया फिर डॉक्टर दूसरे मरीजों को भी देखेगा"।

धनपाल(बेमन से) "निकल ही रहे हैं अम्मा,चलो संतोष नम्रता का हाथ पकड़ लो , मैं सौम्यता को लेकर निकलता हूँ, ऑटो रुकवा लूँगा आओ"!

अचानक जेब में हाथ डालता है तो पैसे कम होते हैं। अम्मा मेरे पास पूरा किराया नहीं है"।

कमला-"ले बेटा कल पीस वाले कालीचरण से हिसाब कर के लाई हूँ पूरे पचास हैं"।

सभी ऑटो से डॉक्टर नायर के क्लीनिक पर उतरते हैं।

डॉक्टर "ओह आखिर आप आ ही गए"!

कमला-"जी डॉक्टर। यदि तीसरी भी लच्छमी आ गई तो हम कहीं के नहीं रहेंगे।"

डॉक्टर-"मैंने इस तरह की जाँच कभी नहीं की।"

धनपाल चौंककर "नायर जी क्या आपने ऐसी जाँच पहले कभी नहीं की"?

डॉक्टर-"नहीं धनपाल मैं ऐसी जाँच पहली बार करूँगा, जिसका मुझको भी बहुत लालच है।"

संतोष-"जी डक्टर साहब आपको कैसा लालच हो सकता है"?

डॉक्टर -"हाँ संतोष मुझे एक जायज लालच है,यदि आपके गर्भ में बेटा हुआ तो आपका और बेटी हुई तो आप पैदा होते ही बिना एतराज मुझे सौंप दोगे!!

धनपाल-"ऐसा क्यों'?

डॉक्टर-"हाँ धनपाल मेरी शादी को 10 वर्ष हो गए बे सन्तान हूँ। मेरी पत्नी का बीमारी के चलते गर्भाशय निकाल दिया गया। इसी कारण उसको संतान नहीं हुई"

कमला-"दूसरी शादी कर लो डॉक्टर अभी तो बहुत बड़ा जीवन पड़ा है"।

डॉक्टर-"दूसरी शादी के लिए तो खुद पत्नी जिद करती रही वो मैं कदापि नहीं कर पाऊंगा"।

संतोष-"फिर तो डॉक्टर जी मेरी कोख में पल रहा जीव बच ही जाएगा,आप जाँच कर दीजिए डॉक्टर साहब! मेरी सास को धैर्य आ जाएगा,दिन रात का यही किस्सा लगा रखा है। न खाती हैं न खाने देती हैं औऱ न सोती हैं न सोने ही देती हैं"।

कमला सुनकर भी अनसुना कर देती है और डॉक्टर व बहू की नजरों से आँखे चुराकर दूसरी ओर देखने का नाटक करती है।

डॉक्टर जांच करता है,अचानक खुश से उछल पड़ता है। धनपाल व उसकी अम्मा एक स्वर से पूछते हैं-" क्या है डॉक्टर"?
डॉक्टर-"मेरी मन्नत पूरी हो गई,मैंने पूरे जीवन मे ऐसा पाप कभी नहीं किया जो गर्भपात अपने हाथों से करूँ! यह कन्या मेरे घर को किलकारियों से गुंजायमान कर देगी।धनपाल ये पकड़ो पांच हजार रुपए,आप संतोष को पूरी तरह खुश और खातिर दारी से रखना बिटिया के जन्म तक।केवल संतोष के खाने पीने में खर्च करना"।
धनपाल-"हे भगवान!हम हत्या के पाप से बच गए ,डॉक्टर तो हमारे लिए ईश्वर से बढ़कर हैं आज"।
कमला शर्मिंदगी का अनुभव करते हुए-"चलते है डॉक्टर साहब"।
सभी घर वापस आ जाते हैं।

पाँच महीने बाद संतोष बेटी को जन्म देती है तो धनपाल डॉक्टर को खबर कर देता है। डॉक्टर पत्नी के साथ बिटिया को लेने अस्पताल आते हैं। संतोष जब तक होश में भी नहीं आती कमला बच्ची को डॉक्टर की पत्नी को सौंप देती हैं। धनपाल की आँखों के आँसू मजबूरी को बयां करते से गवाही दे रहे हैं।
'मैंने अस्पताल का पूरा बिल अदा कर दिया धनपाल! आप में से केवल इस बच्ची की माँ को इससे मिलने की इजाजत है बस। वह आधी रात भी इसके पास मिलने आ सकती है। धनपाल यदि तुम्हारा मन करे तो कभी-कभी आ जाना,लेकिन कमला जी! आपके लिए तो यह बच्ची पहले ही मर चुकी है।' दोनो बेटियाँ नम्रता और सौम्यता डॉक्टर की पत्नी का पल्लू पकड़कर रोने लगती हैं। नम्रता उनका पीछा करते हुए आगे बढ़कर उनसे विनती करती है -"डॉक्टर साहब! क्या गुड़ियों वाला खेल खेलने हम आपके घर कभी -कभी आ सकते हैं"?

डॉक्टर पलटकर देखता है और आंसुओं से भरे नयनों को छुपाते हुए कन्या को धनपाल के हाथों में सौंपकर कहता है-"मैंने इसके नाम पर तीन लाख रुपए जमा कर दिए थे। हमारे भी दो बेटे हैं। मैंने तो इसकी जान बचाने के लिए यह झूठ बोला था कि मैं निःसंतान हूँ"।

तभी अचानक डॉक्टर की बच्ची को लौटाने की बात सुनकर संतोष जो बनावटी बेहोशी का नाटक कर रही थी, बिस्तर से उतरने की कोशिश करती है। जच्चा के कदम डगमगा जाते हैं वह गिर जाती है सरक कर डॉक्टर और उसकी पत्नी के पैरों में सिर रखकर सुबकने लगती है। डॉक्टर उसे उठाते हुए कहते हैं-"संतोष अब तुमको रोने की जरूरत नहीं, बिटिया को प्रेम से पालना। इसको ले जाने का हमारा मन तो बहुत था परंतु अनजान को माँ से दूर करने को भी मेरा मन नहीं गवाही नहीं देता"!

कमला नीची गरदन किए डॉक्टर से कहती है-"मुझे छिमा दे दो डॉक्टर साहब!हम और मेहनत करके इसको पाल लेंगे,आप हमको इतना धन देकर लज्जित मत करो"।
डॉक्टर-इसके लिए धन की एफ०डी० तो मैंने जाँच करने के बाद ही कर दी थी, ईश्वर ने मुझको कन्यादान के सुख से वंचित नहीं होने दिया,ये थोड़ा सा धन हमारा कन्यादान मानकर रख लीजिए अम्मा जी! चलो लतिका!घर चलते हैं"।

धनपाल आगे बढ़कर दोनों को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोला - "डॉक्टर साहब तुम जी रहे हो असली जिंदगी"! ऐसी जिंदगी इंसान को ईश्वर बना देती है। दोनों हाथ जोड़कर विदा लेते हैं। दोनों बड़ी बेटियाँ खुशी के मारे उछल पड़ती हैं और छुटकी का माथा चूम लेती हैं। नर्स संतोष को पुनः बिस्तर पर लिटाने के लिए कहती है। परिवार में उत्सव सा परिवेश हो जाता है।

****

आसिमा भट्ट
अंधेरी पश्चिम-मुंबई
मो. 9967883856

लघु कथाएँ

मुकरना

तुमने ही तो कहा था कि तुम मुझे बहुत प्यार करते हो.
'मेरा यक़ीन करो!
भरोसा नहीं तोड़ूंगा कभी...
तुम्हें इतना ख़ुश रखूंगा जितना तुम भी अपने आपको कभी नहीं रख पाओगी...
कभी ख़ुद अपना उस कदर ख़्याल नहीं रख सकोगी ....'
अब ऐसे कैसे तुम मुकर सकते हो ... ?
'हां! कहा था... तो !!!'
तुमने मेरा यक़ीन क्यों किया?
क्या ? उसका मुंह खुला का खुला रह गया और उसकी आंखों में आये आंसू वहीं जम कर बर्फ़ हो गए ...

तमाचा

पति - हां! हैं मेरे कई औरतों के साथ संबंध. हां, मैं सोया कई औरतों के साथ तो क्या हुआ? क्या मैंने कभी तुम्हें कोई कमी होने दी? क्या एक अच्छे पिता बने रहने में कोई कसर छोड़ी? अपने बच्चों को कभी कोई शिकायत का मौक़ा दिया? क्या मैं तुम्हें सोशल और फॅमिली फंक्शन में अपने साथ नहीं ले जाता? क्या तुम्हें मेरी पत्नी के नाते वो इज्ज़त नहीं मिलती जो मिलनी चाहिए? फिर क्या.... और क्या चाहिए तुम्हें और क्या फ़र्क पड़ जाता है किसने मुझे कब, कहां और कैसे छुआ .... मेरे किसके साथ क्या रिश्ता है! वापस घर ही तो आता हूं, तुम्हारे ही पास!

पत्नी - हां .... क्या फ़र्क पड़ता है? क्या फ़र्क पड़ता है कि मैं तुम्हारे पास, तुम्हारे साथ, तुम्हारी बांहों में होते हुए भी अकेली महसूस करती हूं? क्या फ़र्क पड़ता है कि तुम बिस्तर पर मेरे साथ होते हो तो तुमसे मुझे किसी दूसरी औरत की बदबू आती है... क्या फ़र्क पड़ता है हमारे पति-पत्नी के बीच का निजीपन अब निजी नहीं रहा! और अच्छा! बस एक बात बताओ कि मैं ऐसा करके आती और तुमसे वही सब कहती जो तुम मुझसे कह रहे हो तो क्या तब भी तुम यही कहते कि क्या फ़र्क पड़ता है ?

उसकी बात पूरी होती उससे पहले उसने शालिनी के गाल पर ज़ोर का तमाचा जड़ दिया...

***

विष्णु सक्सेना
शास्त्री नगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. 9896888017

लघु कथाएँ

इच्छा का सम्मान

जाने क्यों हमें चंदू के बच्चे एक आँख नहीं सुहाते थे, जिनके कारण हमारे बाउजी व अम्मा सेवा निवृति के बाद भी हमारे पास आकर रह नहीं पा रहे थे। हम दोनों ही चाहते थे कि वह हमारे पास आकर रहें पर उनका मोह चंदु के बच्चों में ऐसा था कि वह इंदौर छोड़ नहीं पा रहे थे।| चंदु मेरा चचेरा भाई था, जो चाचा चाची के असामयिक निधन के कारण हमारे ही घर रह कर खेला कूदा था उसकी शादी भी बाउजी ने ही करवाई थी। अब उसके एक के बाद एक हुए पांच बच्चों ने घर को चौपाल बना दिया था। हम तो नौकरी के कारण भोपाल आ बसे थे और चाहते थे कि अम्मा व बाउजी भी हमारे पास आकर रहें और यहाँ रह कर चैन का जीवन बसर करें। चंदू बड़ा शातिर था, वह स्वयं तो अपनी पत्नी व दो बच्चों के साथ उसी शहर में अलग घर लेकर रहता था पर अपने तीन बच्चों का बोझ बाउजी के कन्धों पर डाला हुआ था। बाउजी की पेंशन से ही उन बच्चों का पालन पोषण हो रहा था। हमने कई बार अम्मा बाउजी को समझाया कि अब आपकी उम्र इन जिम्मेदारियों को उठाने की नहीं है, अब आप दोनों आराम से यहाँ रहो और चंदू को अपनी जिम्मेदारियां अपने आप उठाने दो। पर वो दोनों बच्चों के मोह में डूबे इंदौर छोड़ नहीं पाए।

एक दिन अचानक बाउजी तीनों बच्चों के साथ भोपाल आए उन्हें देख मन प्रसन्नता से भर गया, वहीँ उन बच्चों को देख मन विषाद से भर गया। चेहरे पर फीकी मुस्कराहट बिखेर सबका स्वागत किया। थोड़ी देर बाद मौका देखकर बाउजी मुझे बालकनी में ले जाकर अकेले में बोले,

"देख मन्नू, जानता हूँ तुझे मेरा इन बच्चों की परवरिश करना अच्छा नहीं लगता। चंदू ने तेरे साथ बहुत ज्यादतियां भी की हैं, तू उससे नफरत करता है पर मैं अपने स्वर्गीय भाई को दिए वचन को निभा रहा हूँ। अब मैं इन बच्चों को घुमाने उज्जैन ले जा रहा हूँ। मेरे पास खर्च को पैसे कम पड़ गए हैं, इसीलिए अपने बेटे के पास आया हूँ। मुझे विश्बास है मेरा बेटा मुझे निराश नहीं करेगा।"

"ठीक है बाउजी यदि आपकी यह इच्छा है, मैं आपकी हर इच्छा का सम्मान करता हूँ। आपको कितने पैसे की आवश्यकता है।"

"केवल दो हज़ार "

"बाउजी , आप तीन हज़ार लीजिये | निश्चिन्त हो बच्चों को घुमाइए ।"

क्रमश: पृष्ठ 63 पर

प्रो. महावीर सरन जैन
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश, मोबाइल: 9971839177

संवेदना और मैं

बुद्धि की राख के
हटते ही-
स्वप्निल पंखो के यान,
सहज, सचेष्ट,
सजग हो उठते हैं।
मेरा 'मैं'-
दब जाता है।
अन्य बहुत से 'मैं'
जो कभी मेरे 'मैं' पर
साधिकार छाए थे
आत्मीय भाव से,
उभरने लगते हैं।
चित्रलिपि,
धीमे-धीमे,
चोंच खोलती है।
अनुभूति की यादों का दबाव
बढ़ने लगता है।
ओस की बूँदें
थरथराती-सी हैं।
फूलों को चूमने
तितलियाँ,
ललचाती-सी हैं।
कामनाएँ
तरल होने लगती हैं।
उन्मादिनी-सी हवा,
थिरकने लगती है।
मन-सूर्य की-
प्रखर प्रज्वलता
बन्द शत दल को
बिखेर-बिखेर देती है।
अबाध्य,
मधु स्मृतियों का पीड़न।
तर्कों की तख्ती के नीचे,
सिसकता जीवन।
अस्तित्व के सागर में,
कराहती लहरें।
सब घेर लेती हैं।
सब लील जाती हैं।
कोलाहल के वात्याचक्रों से
जड़ता मिट जाती है।
रिक्तता भर जाती है।
व्यष्टि,समष्टि,
'मैं' और 'तू'
सारे भेद मिट जाते हैं।
दौड़ में,
गति में,
सक्रियता में,
'मैं'-
स्मृतियों के रथ में-
घूमने वाला,
एक पहिया मात्र होता हूँ।

***

बी के वर्मा "शैदी"
राजेन्द्र नगर, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश , मो. 9871437552

ग़ज़ल

यादों की बस्ती में जाना अच्छा लगता है
कुछ बातें फिर से दोहराना अच्छा लगता है

कठिन सफर में छाँव घनेरी दिख जाए तो फिर
चलते चलते थक भी जाना अच्छा लगता है

बेफिक्री के लम्हे भी हों आपाधापी में
डाल नदी में पांव हिलाना अच्छा लगता है

तन के लफ़ड़े मन के दुखड़े रहें मगर दो पल
सच्चाई से आंख चुराना अच्छा लगता है

सच है खामखयाली में कुछ रखा नहीं फिर भी
कागज की कश्ती तैराना अच्छा लगता है

हमदम की दानिशमंदी भी भली नहीं होती
नादां कभी-कभी बन जाना अच्छा लगता है

तन्हा रहते रहते जब दिल ऊब उठे तो फिर
लोगों का सांकल खटकाना अच्छा लगता है

घालमेल सुख-दुख का भी अब बुरा नहीं लगता
जैसे बच्चे का तुतलाना अच्छा लगता है

बातें तरह-तरह की उठती रहती हैं मन में
ख्वाबों में कुछ महल बनाना अच्छा लगता है

जीवन में खुश रहना हरदम ठीक सही लेकिन
कभी कभी आंसू छलकाना अच्छा लगता है

मां के रहते बचपन का एहसास नहीं जाता
बूढ़ी मां का डांट लगाना अच्छा लगता है

घर की सारी रंग बिरंगी चीजों में मुझको
चित्र तुम्हारा वही पुराना अच्छा लगता है

जिसमें रखी संजोकर तुम से वाबस्ता चीजें
वह लोहे का बक्स पुराना अच्छा लगता है

याद किसी को बार बार मन याद किया करता
तितली के पर को सहलाना अच्छा लगता है

पीरी में भी खुश रहने का मन करता ही है
जैसे संध्या दीप जलाना अच्छा लगता है

***

अनिमेष शर्मा 'आतिश'
शास्त्री नगर, गाजियाबाद मोबाइल –8468066899

ग़ज़ल

(1)

उनकी नज़र ने हमको सँभलने नहीं दिया
हमने भी उनको पहलू बदलने नहीं दिया

कोशिश तो कीं हज़ार मगर फ़ेल कर दिए
उनकी नज़र के जादू को चलने नहीं दिया

पीकर नज़र से रोज़ नशे में भी हम रहे
लेकिन नशे में पाँव फिसलने नहीं दिया

चाहा बहुत बता दूँ मैं उस बे-वफ़ा की बात
मेरी वफ़ा ने राज़ उगलने नहीं दिया

आयेंगे फिर क़रीब मेरे इस यक़ीन ने
दिल को कहीं भी और बहलने नहीं दिया

चाहत थी जिसकी वो जले खुद्दारियों के साथ
दुनिया ने उस चराग़ को जलने नहीं दिया

वो शख़्स जिसको फ़र्श से पहुँचाया अर्श पर
हम को उसी ने फूलने-फलने नहीं दिया

मशहूर है जहान में 'आतिश' का ये हुनर
मौक़ा जो आया हाथ निकलने नहीं दिया

***

(2)

शऊर होता है शायरी का
ज़बान होती है शायरी की
वहीं महकती है ये जहाँ पर
अमान होती है शायरी की

लिखो मुहब्बत पढ़ो मुहब्बत
बुनो मुहब्बत गुनो मुहब्बत
करो मुहब्बत यही मुहब्बत
ही जान होती है शायरी की

कहाँ से चल कर कहाँ आ गए
बदल गया सब चलन अदब का
मेरे वतन की गली गली में
दुकान होती है शायरी की

न कोई हिकमत न कोई वुस'अत
न कोई मेहनत न कोई अज़्मत
जो मीरज़ा है उसी के हाथों
कमान होती है शायरी की

शराब पढ़ लो शबाब पढ़ लो
मज़ाक़ का क्या कोई भी कर लो
तड़प तड़प कर पढ़े जो 'आतिश'
वो शान होती है शायरी की

***

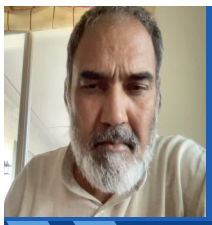

अरविंद कुमार 'विदेह'
लखनऊ - उत्तर प्रदेश मो. 7408403570

स्थायी निवास

खुशनसीब हूँ मैं
यह सोचकर कि
बाकी है अब भी कुछ ज़मीन
दुनिया ज़हान में
-रास्ते ही सही -
जहाँ मैं घूम सकता हूँ
भले ही धूल और धुआँ
खाता और पीता हुआ
-फिर भी जीता हुआ -
जहाँ कोई मुझसे नहीं कहता
'यह ज़मीन मेरी है!
कोई हक नहीं है इस पर तुम्हारा
या किसी का भी!
पैर रखने का भी!'

अट्टहास करके हँसता हूँ मैं
सोचता हुआ कि
कितना पागल है यह इंसान
जिसको नहीं है इतना भी ज्ञान
कि श्मशान के सिवाय बाकी ज़मीन
धरती ग्रह की
नहीं है किसी की भी;
श्मशान, हाँ, है वह ज़मीन
जहाँ वह आखिर में जमकर रह सकता है,
अगर शरीर के जल जाने पर
वह कहीं रहता है,
या उसे कहीं रहना है!

क्षणिकाएँ

जिन्हें नाज़ है जाति पै वे कहाँ हैं?
गुनाहों का नाला सड़ा जा रहा है!
वे लूटे थे दौलत औलादों की ख़ातिर,
पै उन सब पै छापा पड़ा जा रहा है!

*

कितना विदारक है सफ़र
राजधानि से पद-हानि तक!
लूटागार से कारागार तक!
अत्याचार से दैव-प्रहार तक!

*

नेताओं की यही पुकार:
हमें चाहिए लूटाधिकार!
कानून से ऊपर व्यवहार,
नहीं तो मचाएंगे हाहाकार!
वो लोकतंत्र ही क्या
जिसमें नेता जेल गया!

*

अर्थ कमाकर भी भला
क्या जीवन का अर्थ?
यदि धन में ही अर्थ सब,
तब जीवन है व्यर्थ!

***

डॉ० केशव कल्पांत
खुर्जा (उत्तर प्रदेश) मो. 9917276169

गीत

"माटी की गाड़ी"

माटी की गाडी पर
सांसों के पहियों से
जीवन की राहों पर
चलने की ठानी है

साहस का स्पंदन
ममता का ले बंधन
सुख दुख की छाया में
चलती जवानी है

वृद्धि के इशारे पर
आशा की डोरी से
बिंध-बिंध कर, खिंच-खिंच कर
गतिमय जवानी है

इच्छा की गठरी में
धीरज के आंचल पर
सब ही तो सजने हैं
चिंतन के संबल पर
बढ़ती कहानी है

कोयल की कूकों में
रोज भोर आती है
तृष्णा की हूकों में
सांझ रूठ जाती है
कामना की पैंगों पर
झूलती रवानी है

आशा की किरणों से
रत्नदीप जलता है
मेहनत की शक्ति पर
हर गदम बढ़ता है
जीवन के चलने की
ये ही निशानी है

एक बात अपनी कह
एक बार सबकी सह
आरोहों में उठकर
अवरोहों में गिरकर
जीवन की परिभाषा
इतनी ही जानी है

***

वंदना कुंवर रायजादा
वैशाली-गाजियाबाद , उत्तर प्रदेश

ग़ज़ल

(1)

प्यारा प्यारा घर आंगन था
मरुथल है जो एक चमन था

प्रेम की जमुना ही बहती थी
मन क्या था वो वृन्दावन था

डाँट पिता की ऐसी लगती
जैसे मन्त्र कोई पावन था

छिप जाते कष्टों से डरकर
हम पर माँ का वो दामन था

जाने कैसे टूट गया मन
एक खनकता जो कंगन था

मैं जिसको चेहरा समझी थी
वो तो एक टूटा दरपन था

बाँधे रहता था हम सबको
जाने कैसा वो बंधन था

(2)

मन की आशायें कहाँ पूरी हुईं
जब बढ़ीं नज़दीकियाँ दूरी हुईं

दिल में मेरे अब भी है उनकी महक
तेरी यादें आज कस्तूरी हुईं

हम चुकायें कैसे इस दुनिया के ऋण
चन्द साँसें अपनी मज़दूरी हुईं

खाली -ख़ाली थीं जो ये आँखें मेरी
अश्क आये तो भरी पूरी हुईं

तुम मिले तो सूर्य ये बिन्दिया बनीं
रात काजल , शामें सिन्दूरी हुईं

आप आये शब्द मोती बन गये
कल्पनायें कोहेनूरी हुईं

***

प्रगीत कुँअर
सिडनी—ऑस्ट्रेलिया

ग़ज़ल

(1)

सच की तहक़ीक़ात होने लग गयी

झूठ की ख़ुद मात होने लग गयी

दर्द के बादल जो छाये हर तरफ़
आँख से बरसात होने लग गयी

सर्दियों से इसलिए नाराज़ हूँ
था सवेरा रात होने लग गयी

घात से हमने बचाए लोग तो
फिर हम ही पर घात होने लग गयी

रोज़ अपनों से ज़हर पी-पी के अब
ज़िंदगी सुकरात होने लग गयी

जानवर से भी बुरी क्यों आजकल
आदमी की जात होने लग गयी

बाप के जाते ही बच्चों में 'प्रगीत'
काग़ज़ों की बात होने लग गयी

(2)

मुश्किल आने पर अच्छों-अच्छों को डरते देखा है
धीरे-धीरे फिर वो मुश्किल वक्त गुजरते देखा है

मेरे घर में कितने कमरे हैं उनको मालूम नहीं
उनको भी मैंने अब घर की बातें करते देखा है

जाने कब तक खींचेंगी ये साँसें मेरा बोझा भी
मैंने अपनी साँसों को भी जीते-मरते देखा है

जिनको करना है वो उसको करके ही दिखलाते हैं
कुछ को कहते देखा है बस कुछ को करते देखा है

जिन लोगों को ऊँचाई के साथ ग़ुरूर आ जाता है
उन लोगों को ऊँचाई से रोज़ उतरते देखा है

लहरें साहिल से जाने क्या कहकर लौटा करती हैं
लहरों को भी साहिल पे कुछ देर ठहरते देखा है

कल तक तो जो लोग यहाँ बस देसी-देसी गाते थे
उनके खुद के बच्चों को अब बाहर पढ़ते देखा है

***

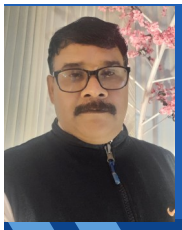

डॉ अरविंद पाराशर
कंकरखेड़ा-मेरठ, उत्तर प्रदेश - मो.8171236080

गीत

कितने हसीन मंजर

तूफान चल रहे हैं और दीप जल रहे हैं।
कितने हसीन मंजर, जीवन में चल रहे हैं।

जीवन की नाव ने जब, लहरों पर की सवारी।
सांसे तो रुक गई है, पर दिल मचल रहे हैं।

हम डोर खींचते हैं, टूटी हुई पतंग की
यो रिंद की ही तरह, गिरकर सभल रहे हैं।

नदिया का पोखरों का, विश्वास ही नहीं है।
सागर से प्यासे लौटे, पनघट को तक रहे हैं।

हम विष के घूंट पीते, यह प्यास है पुरानी।
यादों के चिन्ह बिखरे, जो रेत पर पड़े हैं।

पूर्ति से गिर रहे हैं, जीवन के रोज पन्ने।
धागा नहीं है कोई, पर हम तो सिल रहे हैं।

***

बाकी है

भोर की इस लालिमा का दृश्य अभी बाकी है
मौन हूं मै जिंदगी का गीत अभी बाकी है

हम नशे में चल रहे हैं, पांव डगमगा रहे
कहीं पे दीप बुझ रहे, कहीं पर जगमगा रहे
कहीं पर झरझरा आ रहे हैं, आंसुओं की धार से
भूख गोद में लिए हैं, सो रहे हैं प्यार से
आंसुओं की धार का, सैलाब अभी बाकी है

जिंदगी है कशमकश, तो तू उसे संवार ले
जो कभी बिछुड चुके हैं, फिर उन्हें पुकार ले
पुकार ले उन्हें अभी जो, दूर तक गए नहीं
दृश्य कुछ छिपे नहीं, पांव भी थके नहीं
सांस की इस डोर का, एक जोड अभी बाकी है

प्रेम जो हो चांद से, चकोर सा पुकार ले
हाथ से जो छू सको ना, मन में तू उतार ले
उतार ले तू आत्मा में, तूलिका से रंग दे
जुगनुओं सी दे चमक, तू खुशबऐं बुहार ले
जिंदगी में जीत का, अंदाज है अभी बाकी है

***

अलका शर्मा
नोएडा-उत्तर प्रदेश, मोबाइल: 8755722357

गीत

मन की चादर

मन की चादर मैली मत कर
अवगुण की भी मत बन खान
ईश कृपा से जो तन पाया
उसका कर ले तू सम्मान।

केवल एक सराय जगत ये
इसमें कुछ दिन ही रहना
कर ऐसे सत्कर्म बन सकें
जो तेरा सच्चा गहना
याद रखे तुझको वो मालिक
बन जा तू ऐसा मेहमान
ईश कृपा से जो तन पाया
उसका कर ले तू सम्मान।

नाते -रिश्तेदार एक दिन
सब ही तुझको छोड़ेंगे
नहीं करेंगे रहम वो तेरे
सुख की मटकी फोड़ेंगे
तेरा साथ निभाए दुनिया
बन जा तू ऐसा इंसान
ईश कृपा से जो तन पाया
उसका कर ले तू सम्मान।

किया भला जो कुछ भी तूने
वो तो था तेरा कर्त्तव्य
बदले में जो तुझे मिला है
वो है ईश्वर का मंतव्य
केवल याद सद्गुणों को रख
दुर्गुण से रह तू अंजान
ईश कृपा से जो तन पाया
उसका कर ले तू सम्मान।

परम पिता की महिमा गाकर
जीवन अपना धन्य बना
स्थितियाँ चाहे जैसी भी हों
धर्म नहीं कुछ अन्य बना
जग को दिशा सार्थक देकर
बन सकता है तू रसखान
ईश कृपा से जो तन पाया
उसका कर ले तू सम्मान ।।

***

डॉ. ममता शर्मा
मेरठ-उत्तर प्रदेश, मोबाइल: 9412486032

कविता

कितनी जीवन नौकाएं मंझधार
पहुंचा चिर गंतव्य, हुए व्यर्थ मंतव्य
पुकारें चाहे कितना ही बारंबार

असंख्य दीपों में भरा है जीवन
इंसान नहीं था साक्षात विधाता
खेवेगा कौन बीच धार पडी नैया
बनेगा कौन उस सा जीवन दाता

यही है जीवन औ सुकर्मों का फल
क्षण भर में मिट जाता अस्तित्व
असंख्य यादें झकझोरती, कोंचती
नहीं दिखता कहीं वह व्यक्तित्व

न तनिक पीड़ा न तनिक नैराश्य
न कोई तनिक विचलन न स्पंदन
अदृश्य ने खींची सांस की डोर
रह गया सिर्फ चिरंतन चिंतन

आना खाली जाना खाली
संपत्ति वैभव धरे रह जाते
प्रभु मर्जी आपकी आप जानो
हम तो शून्य निहारते रह जाते

***

मृत्युंजय साधक
गोविंदपुरम, गाजियाबाद मोबाइल...9891375604

ग़ज़ल

(1)

सपनों की क्या बात करें जब सारे सपने झूठे हैं
अपनों की क्या बात करें जब सारे अपने रुठे हैं

बच्चों की किलकारी में ही दिख जाते हैं गिरधारी
उनकी माया की छाया में कितने भाव अनूठे हैं

मां की आंखों में हर बच्चा सूरज भी है चंदा भी
भले वो दुनिया के नजरों में काले और कलूटे हैं

बिटिया की आंखों में हरदम एक उदासी रहती है
पैसों की खातिर कितने ही रिश्ते उसके टूटे हैं

मदिरालय ने मां की चूड़ी, कंगन भी हैं पी डाले
गुल्लक क्या फूटी गुल्लक के साथ भाग्य भी फूटे हैं

सच पूछो तो प्रेम का रस ही मीठा है और सच्चा है
शबरी से कब कहा राम ने बेर तुम्हारे जूठे हैं

***

(2)

है दिल की बात तुझसे
मगर खोल रहा हूँ
मैं चुप्पियों में आज
बहुत बोल रहा हूँ

सांसों में मुझे तुझसे
जो एक रोज मिली थीं
वो खुशबुएं हवाओं में
अब घोल रहा हूँ

अब तेरी हिचकियों ने
भी ये बात कही है
मैं तेरी याद साथ
लिये डोल रहा हूँ

सोने की और न चांदी की
मैं बात करुंगा
मैं दिल की तराजू पे
ही दिल तोल रहा हूँ

चाहो तो मुहब्बत से
मुझे मुफ्त ही ले लो
वैसे तो शुरु से ही
मैं अनमोल रहा हूँ

***

डॉ. अंजु सुमन साधक
गोविंदपुरम, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश, मो. 8368886088

दोहे

दुख के ही साये तले, सुख पाता है ठाँव।
धूप खिले तो ही 'सुमन', मिलती है कुछ छाँव ।।

पुतले से डर क्या भला, सोये कृषक अचेत।
घुसे मवेशी चर गए, हरा भरा इक खेत।।

वादक की ही अँगुलियाँ, साधे बैठीं मौन।
मन-वीणा के तार को, झंकृत करता कौन ।।

नक्श फकीरी हो गए, बंजारे –से नैन।
अक्स हमारा ढूँढ़ता , हम को ही दिन- रैन ।।

शाखों ने झुकके किया, पवन -अतिथि -सत्कार।
पत्तों ने ताली बजा , प्रकट किया आभार ।।

घर में घुस ना जाय तू, बंद करें सब द्वार।
ऐ आँधी !तू ही बता , किसको तुझसे प्यार।।

***

एम. एम. खान:
कोटा (राजस्थान) , मो. 9414569391

ग़ज़ल

हमारे देश में.....

ना नफरतों का कारोबार वो हमारे देश में
हां प्यार प्यार, प्यार प्यार हो हमारे देश में

बना सके दूरियाँ कोई भी अपने दरमियाँ
वो आपसी का ऐतबार हो हमारे देश में ।।

किसी को ठेस न लगे कभी किसी की बात से।
सभी का मान बरकरार हो हमारे देश में।

खिले है भाँति-भांति के चमन में फूल दोस्तो
अनेक रंगों की बहार हो हमारे देश में

इलाज की कमी से हो न सूनी गोद माँओं की
ना चीख फिर दिलों के पार हो हमारे देश में।

वो जिन्दगी की भीख मांगता हुआ चला गया।
क्या हादसे ये बार बार हो हमारे देश में ॥

न लूट पाए अब कोई किसी के भी सुकून को
न कोई फिर से बेकरार हो हमारे देश में ।

दुखों को बाँटना अज़ीम काम है जहान में
ये काम तो हज़ार बार हो हमारे देश में।

***

मुकेश निर्विकार
बुलन्दशहर –उत्तर प्रदेश, मो. 9411806433

कविता

रेत नदी के सूखे आँसू

नदी से सिर्फ पानी की ही
दरकार नहीं होती
बालू या रेत की भी होती है

बेकार नहीं होता है
नदी का सूखना भी
इमारतों के लिए
बेहद जरूरी है
सूखी नदी

इमारतों और नदी का
गहरा मेल है
नदी से ही बनते हैं मकान
उसी के रेत और उसी के
पानी को मिलाकर
बनी हैं ये ऊँची इमारतें

जिनके हृदय में
करूणा का सोता है
नदी उनकी ऑखों में
बहती है पानी बनकर

इंसान की सजल
और निर्जल ऑखों में
खुद को चुपचाप
बांट देती है नदी-
रेत और पानी में।

ऊँची, और ऊँची दीवारों को
उठाने के लिए
सुखाने ही होंगे हमें
नदी के गीले ऑसू
अपने ऑसूओं को सुखाकर ही
ऊँचाई पकड़ती है नदी

रेत नदी के सूखे ऑसू हैं।

***

डॉ. जितेंद्र कुमार
मेरठ –उत्तर प्रदेश, मो. 9412835058

कविता

आलपिन

मैं तुम्हारी पुरानी अनिस्तारित फाइल के
कोने में फँसी
जंग खा रही आलपिन हूँ।
अब तुम अपने प्रपत्रों को सँभालो
मैं तो मुक्ति चाह रही हूँ ।
इन वाद-विवादों के उलझे मसौदों को
मुझसे और नहीं देखा जाता है ।
मेरी यह कृशकाया
इनकी नम उदासी में
नित परत दर परत उधड़ती ही जाती है।
तुम रखो, सहेजो अपने इन प्रपंचों को,
और खींचते रहो,
अपनी बुद्धि की प्रत्यंचा को ।
मुझें नहीं चाहिए ऐसा जुड़ाव,
जो मेरी परवाह से विमुख,
बस मेरा उपयोग जानता है
और आए दिन
बस औपचारिक सा सहला कर
नए-नए उत्तरदायित्वों को
धीरे से टाँक देता है।
सब जानती हूँ ,
तुम्हारे लिये मैं नही ,
तुम्हारी पत्रावली के प्रपत्र महत्वपूर्ण हैं।
जिस दिन यह निस्तारित होगी
तुम पत्रावली के साथ बाँधकर
मुझे भी रख दोगे
कालबाधित होने के लिए
और फिर किसी दिन
निपटा दोगे रद्दी की तरह।

कवि

कवि भी कमाल करता है
ध्वनियों को शब्दों में गढ़ता है
जैसे जंगल में गूँजती
बहुत सी आवाजें हैं
जहाँ हाथी और शेर की ही नहीं
झींगुरों के भी बाजे-साजे हैं
खिलती कलियों की,
कच्ची फलियों की अकुलाहट
पत्तियों में हवा की सरसराहट
कवि सब कुछ सुन लेता है
कविता में गुन लेता है
श्रव्य, अपश्रव्य
या हो पराश्रव्य
सुनता कानो से कभी
और कभी वह आँखों से
सुन लेता तब भी है
जब करता वह दोनों को बंद
और रच देता है सुंदर छंद।

***

डॉ बिन्दु कर्णवाल
गाजियाबाद – उत्तर प्रदेश, मो. 9810646945

कविता

खुदी

बातें क्यों ये नश्तर सी चुभ जाती हैं,
बात तो बात है, बात में रखा क्या है,
क्यों हम इनकी गहराइयों में जाते हैं,
क्यों इन पर सोचते जिंदगी बिताते हैं।

जिंदगी को कम लोग ही समझ पाते हैं,
नश्तर तो यूं भी कभी भी चुभ जाते हैं,
जाने दो न सोचो इन पर,
ये तो यूंही समय बर्बाद किए जाते हैं।

हमने एक लंबा वक्त गुजारा है
रिसते हुए घावों के संग
कुछ हाथ लगा तो बस इतना
देख लिए सब अपनों के रंग
उन्हें याद करते हैं तो हम
फिर से पीछे मुड़ जाते हैं

तुमने पाया हो कोई अर्थ कहीं पर,
तो बतलाना हमें भी उस अर्थ का अर्थ,
हमने तो खंगाला था समंदर भी मगर,
लगी हाथ अपने कुछ बेजान कौड़ियाँ और कण।

विश्वास है मिलेगा सब कुछ
मगर अपने अंदर ही,
यह मेरी नादानी है कि
खुद को ही ढूंढ नहीं पाई हूँ।

खुद से बिछड़े एक जमाना बीत गया है,
खुद से खुद को मिले जमाना बीत गया।

***

ऋषभ शुक्ला
शाहजहाँपुर-उत्तर प्रदेश , मो. 8299455767

कविता

क्यों है...?

ये मौसम सारे नम क्यों हैं?
दुनिया में इतने ग़म क्यों हैं?
कथनी करनी एक हो जिनकी-
इंसां वो इतने कम क्यों हैं?

हर चेहरे पर चेहरा क्यों है?
जज़्बातों पर पहरा क्यों है?
किसी समंदर से भी ज़्यादा-
शख़्स हुआ हर गहरा क्यों है?

अंधियारा ये फैला क्यों है?
उजला रंग भी मैला क्यों है?
जन्मों के रिश्तों में भी अब-
हर नहले पर दहला क्यों है?

सुलगी - सुलगी सी आग क्यों है?
तेरे - मेरे का राग क्यों है?
हर रात है कोयले सी काली-
उस पर भी दिखता दाग़ क्यों है?

***

डॉ. नीलम गर्ग
हापुड़-उत्तर प्रदेश, मो. 9458050725

गीत

हार का भी मान कर तू

मन मेरे नव कल्पना साकार कर तू।
बन चितेरा चित्र का निर्माण कर तू।।

भोर का फैला उजाला
अरुण सा लगता है अम्बर
सुनहरी रश्मियों के संग
खेलते नदियाँ-समन्दर
शैल शिखरों पर विहँसती,
उषा का सम्मान कर तू ।
बन चितेरा चित्र का निर्माण कर तू।

नया है हर एक पत्ता
हर कली मुस्का रही है,
मानो धरा भी झूमकर
नवस्वरों में गा रही है
बूंद के मोती सजाकर,
धरा का श्रृंगार कर तू।
बन चितेरा चित्र का निर्माण कर तू।

आयी अब सन्ध्या सलोनी
चाँदनी बुन रही सपना,
चाँद के दर्पण में धरती
देखती मुखचन्द्र अपना,
माँग तारों की सजाकर,
निशा का आह्वान कर तू।
बन चितेरा चित्र का निर्माण कर तू।

मौन हैं सारे तरु पर
कह रहे हैं कुछ परिंदे,
तेज तूफानी हवा में
टूटकर बिखरे घरौंदे
फिर से तिनके-तिनके चुनकर,
नींड़ का निर्माण कर तू।
बन चितेरा चित्र का निर्माण कर तू।

युगों का प्यासा समन्दर
पी गया अनगिनत नदियाँ,
बह रही है किन्तु धारा
बीतती जाती हैं सदियाँ,
जीत ही सब कुछ नहीं है,
हार का भी मान कर तू।
बन चितेरा चित्र का निर्माण कर तू।

***

डॉ. कमल किशोर गोयनका
अशोक विहार, नई दिल्ली - मोबाइल 9811052469

पुस्तक समीक्षा

मनुष्य की नियति का अविस्मरणीय काव्य

मुकेश निर्विकार मेरे प्रिय युवा कवि हैं। वे जेनुइन कवि हैं और किसी प्रचार-प्रशंसा से दूर रहकर और सारा दिन व्यस्त रहने पर भी कविता लिखते हैं और सच ही कविता लिखते हैं। 'प्रार्थनाएं कुछ इस तरह से करो' मुकेश निर्विकार का दूसरा कविता-संग्रह है, जिसमें कुल 83 कविताएं हैं। इससे पूर्व 2017 में उनका पहला कविता संग्रह 'हत्यारी सदी में जीवन की खोज' प्रकाशित हुआ था और वह महत्वपूर्ण माना गया था। कवि उसमें पूरी सदी की मानवीय चेतना के सत्य का उद्घाटन कर रहा था कि कैसे मनुष्य ने ही मानवीयता की हत्या का वातावरण बना दिया है। एक कवि के लिए मनुष्य और उसकी सृष्टि के अस्तित्व के प्रति संवेदनशील होना ही उसकी सार्थकता का प्रमाण है। कवि अपने स्व से मुक्त होकर समष्टि के प्रति जब संवेदनशील होता है, तभी कविता का जन्म होता है।

मुकेश निर्विकार का यह दूसरा कविता संग्रह भी इस 21-वीं सदी के मूल स्वभाव और चरित्र के मुद्राश्रित मानसिकता और जीवन-दृष्टि का उद्घाटन करता है और 'प्रार्थनाएं कुछ इस तरह से करो' कविता में वह तीव्र व्यंग्य के साथ प्रार्थना का सही रूप पाठक के सामने रख देता है- "प्रार्थनाएं कुछ इस तरह से करो/(ईश्वर से नहीं 'मुद्रा' से करो)/ कि हमारा सब कुछ बदल जाए मुद्रा में/हमारी प्रतिभा, हमारा धोखा/हमारा हुनर, हमारा सौंदर्य /हमारा श्रम, हमारे संस्कार/हमारे त्यौहार तथा/हमारे ऐब भी/मुद्रा के आलोक में प्रदीप्त इस धरा पर/यक़ीन मानो/अब इससे बेहतर कोई प्रार्थना नहीं/आखिर, बाजार से खरीदने हैं हमें/अपने जीवन और जीविकाएं दोनों ही!'" यह सीधी-सादी कविता नहीं है। इसमें कवि का क्षत्-विक्षत् मन-आत्मा हाहाकार कर रही है और इस मुद्रालोक और जीवन पर मुद्रा साम्राज्य का आधिपत्य उसके अंतर्मन को विह्वल कर रही है। ईश्वर को पदस्थ करके मुद्रा ईश्वर बन गई है, जो रक्षक नहीं हत्यारी है। यह सदी मुद्रा की है, यह सदी मुद्रा को सर्वशक्तिमान बनाती है, यह हमारे जीवन को, संस्कार को, हमारी मनोवृत्ति को, हमारे मानवीय मधुर संबंधों को और हमारी संस्कृति को बदलकर मुद्रा-संस्कृति में रूपांतरित कर रही है। मुद्रा के वर्चस्व ने न किसान को छोड़ा है, न शहरी बाबू को और न नेता और व्यापारी को, न प्रेम को और न दुष्टता को, सब इस मुद्रा-लोक में समा रहे हैं। प्रेमचंद ने अपने समय में अपना मुख्य लक्ष्य 'धन की दुश्मनी' कहा था और 'महाजनी सभ्यता' लेख भी लिखा था। वह समय व्यापारियों का था, परंतु समाज में सदाचार, पवित्रता, मनुष्यता, नैतिकता बिल्कुल खत्म नहीं हुई थी, लेकिन स्वतंत्र भारत के 70-75 वर्ष होने तक धन-सत्ता और मुद्रा-शक्ति सर्वोपरि बन गई और कवि के अनुसार ईमानदारी, बलिदान, परोपकार, सदाचार सब मुद्रारथियों के कुचक्रों से लुप्त हो रहे है और ईश्वर कुछ नहीं कर सकेगा। इस दृष्टि से 'ईश्वर से उम्मीद नहीं' तथा 'नहीं दे पाओगे ' कविताएं महत्वपूर्ण हैं, जिनमें कवि ईश्वर की सत्ता तथा उसके न्याय को चुनौती देता है, लेकिन वह जानता है कि मनुष्य ईश्वर से बेवज़ह उम्मीद करना नहीं छोड़ेगा, लेकिन "इंसान से पूरी उम्मीद है कि वह/रखेगा जीवित सदैव ईश्वर को/अपने ज़ेहन में/और लड़-मरेगा वह/अपने ईश्वर की खातिर/बेवज़ह।" कवि का व्यंग्य यहाँ दर्शनीय है। ईश्वर से कोई उम्मीद नहीं, फिर भी मनुष्य अपने-अपने ईश्वर के लिए लड़-मरने को तैयार है, जिसका कोई अर्थ नहीं, कोई वजह नहीं। इसीलिए कवि कहता है कि प्रार्थना ईश्वर की

नहीं मुद्रा रूपी ईश्वर की करो, जो चाहे जीवन से सदाचार, मानवता, नैतिकता सबका बलिदान करना पड़े, लेकिन कवि के 'उम्मीद' शब्द में लोक-विश्वास और आस्था है, जो यह मानता है कि जब भी पाप बढ़ेगा, पुण्य की हानि होगी, ईश्वर जन्म लेता रहेगा, पर यह हर कालखंड में नहीं होता। मानव-सृष्टि का यही इतिहास है। आप देखें कि 1857 की क्रांति एवं भयंकर नरसंहार के बाद सन् 1900 के बीच अधिकांश महान राष्ट्रनायकों का जन्म हुआ, चाहे वह राजनीति, धर्म, ज्ञान, साहित्य-कला का क्षेत्र हो और अंग्रेजी दासता-दमन और शोषण को चुनौती दी, लेकिन स्वतंत्रता के इन 75 वर्षों में एक भी उन जैसे राष्ट्रनायक ने जन्म नहीं लिया। कवि और लोक उम्मीद करते ही रह जाते हैं।

मुकेश निर्विकार के इस कविता-संग्रह में मुद्रालोक तथा मुद्रा-साम्राज्य एवं मुद्रा-भंडार ही नहीं है, उसमें गांव की ज़िंदगी है, गांव का प्रेम है, मां तथा परिवार का स्नेह-आशीर्वाद है और कुछ कविताएं प्रेम की स्मृति और प्रेमानुभवों की भी है, जिनका प्रेमास्पर्श हमारे मन को छू लेता है और कवि की एक दूसरी दुनिया से साक्षात्कार कराता है। इसमें प्रेम पर कई कविताओं में इस कविता का जरा अनुभव करें-"आज, जानबूझकर, अरसे बाद/गया अपने कॉलेज/स्मृतियों को ताज़ा करने के लिए/वहाँ, क्लास में, उस डेस्क के पास/जहाँ तुम बैठती थीं/छूकर देखी वही डेस्क आज फिर मैंने/वर्षों बाद भी वहांॅॅं/वही स्पर्श था तुम्हारा/वही सिहरन, वही छुअन, वही स्निग्धता.../सच मानो, तुम अपनी/प्यारी कोमल अंगुलियों को/वहीं छोड़ आई हो प्रिये/कॉलेज की अपनी उसी पुरानी डेस्क पर।"'('कॉलेज की उसी पुरानी डेस्क पर' कविता से)। कवि की यह अनुभूति इतनी चित्रात्मक, इतनी मर्मस्पर्शी तथा इतनी भाव-विह्वल करती है कि जीवंत सरलता और सहजता इतनी गहन है कि वह रसमग्न कर देती है। इस कविता को देखते हुए अन्य प्रेम कविताएं, जैसे 'कई बार सोचता हूॅं' लंबी प्रेम कविता भी मुझे भाव-विह्वल नहीं कर पाती। कवि प्रेम का उपासक है, लेकिन इस कविता की अनुभूति विशिष्ट है और ऐसी प्रेम कविता मुझे अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

मेरे विचार में, मुकेश निर्विकार की कविताओं में विचार प्रधान है, परंतु उसकी भावानुभूतियों का संसार भी साथ-साथ चलता है और विचारक कवि और भावुक कवि एक रूप में संश्लिष्ट हो जाते हैं। मुकेश जीवंत कवि हैं, जेनुइन कवि हैं और उनका काव्याकाश व्यापक है, लेकिन मनुष्य का जीवन, उसकी नियति और मनुष्य द्वारा रचे संसार में मनुष्य द्वारा मनुष्यता के हनन के प्रति तीव्र वैचारिक एवं अनुभूतिमय विस्फोट है, परतु उसी मानवीय संसार का कोमल तथा प्रेममय संसार भी जीवित हैं जो हमें कवि की रचनात्मकता के प्रति आश्वस्त करता है। मुकेश अपनी सदी के मनुष्य के मुद्रामुखी तथा मुद्रागृह में बंदी रूप को गहराई से अंकित करते हैं और मनुष्य की भावात्मक उदात्ताओं को भी जीवंत रूप देते हैं और मैं उन्हें इसके कारण इस दशक का एक प्रतिनिधि कवि मानता हूं। उनका यह कविता-संग्रह 'प्रार्थनाएं कुछ इस तरह से करो' इस वर्ष का ही नहीं आने वाले वर्षों में भी अपनी गहन अनुभूतियों तथा संवेदनाओं के साथ मानव नियति के प्रति चिंतनशील कवि के रूप में पठनीय तथा स्मरणीय बना रहेगा और मैं चाहूंगा कि इस कविता-संग्रह को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो। आशा है, सुधि पाठक और पुरस्कृतकर्ता मेरे मंतव्य का अनुमोदन करेंगे।

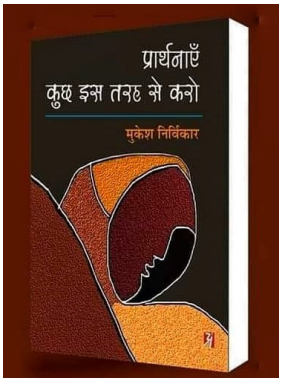

पुस्तकः 'प्रार्थनाएं कुछ इस तरह से करो' (कविता-संग्रह)
कविः मुकेश निर्विकार
आईएसबीएन: 978-93-91925-87-1
प्रकाशकः अंतिका प्रकाशन प्रा0लि0, शालीमार गार्डन, ग़ाज़ियाबाद (उ0प्र0)

***

हरदान हर्ष
जयपुर—राजस्थान, मो. 9785807115

पुस्तक समीक्षा

आध्यात्मिक प्रेम का सफल रेखांकन

'सुनो राधिके सुनो' वरिष्ठ कवि विष्णु सक्सेना का छटा काव्य संग्रह और दूसरा खंड काव्य है। श्री सक्सेना जी के पूर्व में 'बैंजनी हवाओं में', 'गुलाब कारखानों में बनते हैं, 'धूप में बैठी लड़की' एवम 'सिरहन साँसों की' काव्य संग्रह तथा 'अक्षर हो तुम' खंड काव्य प्रकाशन में आ चुके है |

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के 'द्वापर' और धर्मवीर भारती के 'कनुप्रिया' कृष्ण राधा सम्बंधित खंड काव्यों की श्रृंखला में ही विष्णु सक्सेना का 'सुनो राधिके सुनो' खंड काव्य है। 122 पृष्ठ में यह खंड काव्य अभिन्नता, साहचर्य, क्रीडा व व्यवहार नामक चार सर्ग में बंटा हुआ है। सुमधुर रस खंड काव्य में कवि कृष्ण और राधा के माध्यम से मातृशक्ति की उदभावना, प्रेम, सखाभाव, निष्काम कर्म, द्वैत –अद्वैत, विरह, मिलन, रास, प्रतीक्षा, सन्देश और आध्यात्मिक प्रेम पर प्रकाश डालता है। संबोधन शैली में लिखे इस रस काव्य में कृष्ण कथा के घटक पात्रों – माता कीर्ति, यमुना, मोर, कागा और कुब्ज लता आदि के माध्यम से राधा जी के प्रति उनके राग को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

कवि का मानना है कि परम सत्ता जब जब सृष्टि में कोई विशिष्ट कार्य करना चाहती है, तो उसे अद्वैत से द्वैत रूप धारण करना पड़ता है। द्वापरयुग के अंत में जब परम सत्ता को सात्विक प्रेम के प्रसार की आवश्यकता अनुभव हुई तो श्री कृष्ण अपनी अन्तरंग शक्ति राधा जी के साथ बृज की धरा पर अवतरित हुए |अपने रस जनित व्यवहार से प्रेम के सात्विक व आध्यात्मिक स्वरुप का प्रसार किया। 'प्रेम भाव' सर्ग में प्रेम को परिभाषित करते हुए कवि कहता है, 'प्रेम , प्रेम है / प्रेम मोह नहीं / प्रेम राग है / प्रेम प्यास नहीं / प्रेम तो है बस / निजता का मौन समर्पण ! इस खंड काव्य का केंद्र राधा जी हैं , जो श्रीकृष्ण की अभिन्न शक्ति हैं। इसे स्पष्ट करते हुए 'प्रतीक्षा सर्ग' में कवि राधा जी के श्री मुख से कहलवाता है,'मैं बावरी / किस किस को समझाऊँ / मैं तुम्हारी - / चिर संगिनी / अनंत काल से / रही संग तुम्हारे / सृष्टि के हर संगठन में / सृष्टि के हर विघटन में / चिर सहयोगी बन / हर कर्म की / मन में बसी रही तुम्हारे।'

मोह और ईर्ष्या से रहित प्रेम ही सात्विक प्रेम होता है। इसी तत्व को समझाते हुए 'मोह सर्ग ' में श्री कृष्ण राधा जी से कहते हैं , ' जब रहती है / प्रेम में / पाने की कोई कामना / कोई आकांक्षा / उसे प्रेम नहीं / मोह कहते है / केवल मोह !'

कवि ने सृष्टि के मूलाधार श्री राधा–कृष्ण के स्वयं सिद्ध योगजन्य फल परम रस को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक स्तर पर उतरने का प्रयास किया है। 'रास सर्ग' में आत्मारमण ही महारास कहा है। कवि कहता है, 'इस सृष्टि का सृजन / सृजन में हो रही हर क्रिया / उसकी प्रतिक्रिया / सभी कुछ / हमारी रासलीला ही तो है।'अधिदैविक स्तर पर मोर व कौआ के माध्यम से सात्विक प्रेम का चित्रांकन किया है। अधिभौतिक स्तर पर राधा जी किस प्रकार प्राणी मात्र में व्याप्त होकर

सृजन की निरंतरता बनाये रखती हैं, इसे कवि ने 'माँ भाव ', कुञ्ज लता भाव व मोर भाव में सहजता से वर्णन किया है।

वर्तमान काल में प्रेम की दयनीय अवस्था पर कटाक्ष करते हुए कवि 'आहट सर्ग' में कहता है, 'अग्नि फेरे और वचन / खोकर अपने संस्कारित अर्थ / दिखावट / हाँ, बस दिखावट ही / बन कर रह जाएँगे !' कवि का यह चिंतन खंड काव्य को समकालीनता से जोड़ता है। कवि की कल्पना शक्ति स्तुत्य है। राधा के माध्यम से कवि आधुनिक बोध लिए आज के सन्दर्भ में 'स्त्री विमर्श' की विवेचना रस खंड काव्य में यथोचित रूप से करता है। 'काम' को स्थूल मानते हुए कवि आध्यात्मिक प्रेम की महत्ता को रेखांकित करता है। खंड काव्य की भाषा समृद्ध है।

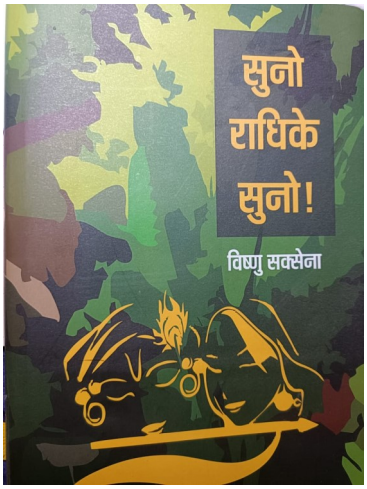

पुस्तक : सुनो राधिके सुनो (खंड काव्य)
लेखक : विष्णु सक्सेना
आईएसबीएन: 978-93-90659-96-8
प्रथम संस्करण : 2021
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली संपर्क

***

लघु कथा पृष्ठ 41 से आगे ....

बंटवारा

राजा बैताल की शर्तों को स्वीकार कर उसे अपने कंधे पर डाल कर अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा था। बैताल ने कहना शुरू किया, "राजन, एक सेठ के दो बेटे थे। दोनों बेटे जवान हो गए, उनकी शादी हो गई तो उसने अपनी संपत्ति का बंटवारा करने की सोची उसने बेटों को बुलाया और बताया कि वह अपनी संपत्ति दोनों बेटों में बाँट कर मुक्त होना चाहता है। वह एक बेटे को अपनी तीन चौथाई संपत्ति तथा दूसरे बेटे को एक चौथाई संपत्ति देना चाहते हैं। साथ ही यह भी शर्त है कि जिस बेटे को एक चौथाई संपत्ति देंगे वे खुद उसी बेटे के साथ रहेंगे भी।

राजन, जिस बेटे को वह एक चौथाई संपत्ति देना चाहते हैं, उसी के साथ रह कर वह उस पर बोझ भी बनना चाहते हैं। क्या उनका यह निर्णय सही है, यदि सही है, तो किस कारण सही है ? यदि जानते हो तो शर्त के अनुसार बताओ ! "

राजा ने शांत भाव से उत्तर दिया, "सेठ का निर्णय सही था क्योकि सेठ का व्यापार कौशल उस बेटे की एक चौथाई संपत्ति को फिर से दूसरे बेटे की तीन चौथाई संपत्ति से भी ज्यादा बना देगा। फिर पिता का आशीर्वाद बेटे की बड़ी ताकत होता है"

राजा की बात पूरी होते ही बैताल फिर से उड़कर पेड़ पर जा बैठा।

***

डॉ. मोनू सिंह
छपरौली, बागपत-उत्तर प्रदेश

पुस्तक समीक्षा

बेहतर समाज का स्वप्न बुनती कविताएं

'खुशबुओं की खिड़कियां' डॉ. देवकीनंदन शर्मा का दूसरा काव्य संग्रह है। इस संग्रह में 56 कविताएं हैं। इन कविताओ में सबसे पहले जिस बिन्दु पर ध्यान जाता है, वह है इन कविताओं का सरल और तरल स्वर। विलियम वड्र्सवर्थ ने लिखा था कि कविता भावनाओं का शक्तिशाली और सहज उद्रेग है। यह परिभाषा इन कविताओं के संदर्भ में अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। ये कविताएं कवि की भावनाओं का सहज और सरल स्फुरण हैं। इनमें कवि के निश्छल मन की अनुभूतियां बिना कृत्रिमता और अतिरंजना के सहज रूप में मुखरित हुई हैं। कवि किसी खेमे में सम्मिलित होने का आकांक्षी नहीं है, न ही किसी रूढ़ विचारधारा या वाद का आग्रह उसमें है वरन् वह गहन मानवीय बोध और सामाजिक सरोकार का स्वर प्रबल देता है। इन कविताओं का स्वर आस्था का है, सकारात्मक दृष्टिकोण इन कविताओं का उत्स भी है और विस्तार भी है।

कविताओं में प्रकृति और मानव का साहचर्य, सामाजिक संबंधों की नई व्याख्या मुखरित हुई है। इनमें सत्यम शिवम सुंदरम का मणिकांचन संयोग देखने को मिलता है। ये कविताएं भले ही अपने कलेवर में लघु हों किंतु अर्थ की दृष्टि से विस्तार लिए हुए हैं। अभिव्यक्ति को जटिल या दुरूह बनाना कवि का अभिप्रेत नहीं है। ये कविताएं हर आम -ओ- खास तक बहुत सरलता से पहुंचती हैं। सम्प्रेषणीयता इन कविताओं की अन्यतम विशेषता है। संग्रह की पहली ही कविता करो कृपा मां में हमें कवि की निस्पृह इच्छा के दर्शन होते हैं। कवि मां सरस्वती से समाज में फैली घृणा, द्वेष, अंहकार और विभेदों की दीवारों को खत्म करने की कामना करता है।

कवि की दृष्टि सामाजिक विषमताओं पर बराबर बनी रहती है। वह भेदभाव को मिटाकर जगत को समरस करने का आकांक्षी है। कविता का विषय चाहे जो हो किंतु कवि को समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं और अंतर्विरोध पल भर के लिए विस्मृत नहीं होते। 'हम ठहरे फगुहारे' में कवि फगुहारों के हुड़दंग में भी अपने सामाजिक दायित्वों को नहीं भूलता। घृणा और द्वैष मिटाकर दिलों में प्रेम घोलने की निर्मल मनुहार देखिए -

मिटा घृणा द्वेष / रंग प्यार के / दिलों में घोलेंगे
हम ठहरे फगुहारे / जमकर होली खेलेंगे।

हम सभी ने कोरोना काल के भयावह मंजर को देखा और अनुभव किया था। समूची सृष्टि में कोरोना का भय अंदर तक जड़ जमा चुका था। चहुंओर मौत का सन्नाटा, जीवित रहने के लिए एक एक सांस की जद्दोजहद, समाचारपत्रों, टेलीविजन, मीडिया के सभी माध्यमों पर एक अनाम सी चुप्पी ने हमें घेर लिया था। इन सभी विषम परिस्थितियों के मध्य एक कलमकार अपने सामाजिक दायित्वों को पहचानता है। हताश और निराश समाज में वह आशा के संचार हेतु अपनी कविता को अस्त्र बनाता है और कोविड जैसे क्रूरतम त्रासदी को परास्त करने की आंकाक्षा व्यक्त करता है -

करेंगी परास्त / कोविड भय
रंगों की बौछारें / हम ठहरे फगुहारे

देवकीनन्दन की कविताओं में नैराश्य नहीं है,न ही दैन्य है,न ही पलायन है और न ही आध्यात्मिक झुटपुटे में ले जाकर स्थितयों का सामान्यीकरण या सरलीकरण किया गया है। ये कविताएं उजास की कविताएं हैं,मानव की अटूट जिजीविषा की कविताएं हैं। संग्रह की किसी भी कविता में उदासी या मायूसी का स्वर नहीं है अपितु समस्याओं को धैर्य पूर्वक सुलझाने का गहन विश्वास है। 'आएगा सुख' नामक कविता का का एक टुकड़ा देखें -

रही गुजर / आज जिंदगी / भयावह मुकाम से
कहें क्या शतरंज बिछाए / सत्ता के निजाम से
हों न उदास / आएगा सुख / धैर्य साहस सुकाम से

कवि को रोग की भलि भांति पहचान है। वह उस पर पर्दा डालकर आदर्श का रूख नहीं करता अपितु निसंकोच कह देता है कि बहुत सी समस्याओं के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति उत्तरदायी है,जो हर वक्त शतरंज की बिसात बिछाकर देश के सद्भाव के फेब्रिक को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहती है। देवकीनंदन शर्मा ने राजनीति को आधार बनाकर बहुत ही प्रामाणिक और ईमानदार कविताएं लिखी हैं। वे सत्ता की निरंकुशता सांप्रदायिकता और नफरती भरी कारगुजारियों पर तीखी प्रतिक्रियाएं हैं। सब कुछ कहां बदल

रहा है यथार्थ के खुरदरे धरातल पर बुनी गई कविता है। कविता बतकही से शुरू होकर हमारे समय और समाज की गहन स्कैनिंग करती हुई आगे बढ़ती है -

आस्थाहीन हुई धर्मनीति / विद्वेषभरी बनी समाजनीति
मूल्यों को ठेंगा दिखा रही राजनीति
हकीकत यह है / वोटों और झंडों में देश बट रहा है
सब कुछ घट रहा है / आदमी आदमी से कट रहा है

'अबकी बार' में भी यही भावना अभिव्यक्त हुई है। हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। निसंदेह इन सात दशकों में हमने बहुत कुछ अर्जित किया किन्तु समाज में वर्ग विषमता हमारा मुंह चिढ़ा रही है। तमाम सर्वेक्षण इस बात की तस्दीक कर रहे हैं कि अमीर और अमीर होते जा रहे हैं जबकि गरीब और गरीबी के दलदल में धंसते जा रहे हैं। समता और न्याय की बात बेमानी लगती है। रामधारी सिंह दिनकर की पंक्तियां याद आ रही है

शांति नहीं जब तक,जब तक नर भाग का सम हो
न किसी को कम न किसी को अधिक हो

इस कविता के आलोक में देवकीनंदन शर्मा की कविता का यह टुकड़ा देखिए -

मिटे लाचारी / झूमें झोपड़ियां
छूटे घर -घर / खुशियों की फुलझड़ियां ....
खत्म हो / दूषित राजनीति
पल्लवित हो / समता न्याय की सुनीति

'ये मदारी' नामक कविता में राजनीतिक विद्रूपताओं का बहुत प्रामाणिक आख्यान प्रस्तुत किया गया है। कविता के शीर्षक में ही गहन व्यंजना विन्यस्त है। कविता आपको बचपन में ले जाती है जहां आप मदारी का डुगडुगी बजाकर बंदर बंदरिया की शादी का तमाशा दिखाकर लुभा रहा है। कविता दूसरे की बंध में अपने पूरे तेवर में राजनीतिक विद्रूपताओं को और राजनेताओं के स्याह चरित्रों की परतों की छीलती चली जाती है। आज की राजनीति तमाशा ही तो बनकर रह गई है। राजनीति में मुफ्तखोरी की संस्कृति पर भी गहरा तंज़ किया गया है -

पहले ये साड़ी, मंगलसूत्र टेलीविजन
प्रेशरकूकर, साईकिल, लैपटाप बांट
भोगते रहे सत्ता सुख
फिर फ्री बिजली पानी बांट
मशगूल रहे चैन की बंशी बजाने में

मुफ्त की संस्कृति समाज में निकम्मेपन को जन्म और श्रम की संस्कृति के प्रति अवमानना को प्रश्रय देती है। परिश्रम के प्रति नकारात्मक धारणा को बल देती है।

संग्रह में संकलित कविताओं का दूसरा सिरा लोक से गहन रूप से आबद्ध है। देवकीनन्दन शर्मा का मन लोक में बहुत रमता है। भारतीय तीज़-त्यौहार, खान पान, उत्सव, उल्लास, उमंग, खेत खलिहान, गंगा, बरखा, ऋतुएं उनकी रचनात्मक चेतना का अभिन्न हिस्सा है। इन कविताओं में लोक की बहुत प्रामाणिक और सरस अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। संग्रह में संकलित आ गया ऋतुराज, हुड़दंगी फागुन, मच्यौ ऐसो धमाल, हम ठहरे फगुहारे, मौजी बसंत, उड़यौ उड़यौ रे गुलाल, सावन चुनावी फाग आदि कविताएं लोक के रंग में रची पगी हैं। लोक का वर्णन करता हुआ कवि बेसुध हो जाता है। आ गया ऋतुराज कविता का एक अंश देखिए -

खुली खिड़कियां / दरवाजे
लगी धूप भी / अब मुस्कराने।
पीट रहा ढोल / मौसम कलावंत
आ रहा / ऋतुराज बसंत।

कविता के एक एक शब्द से जैसे रस टपक रहा हो जो आपके स्नायु तंत्र को झंकृत कर रहे हों। लोक का कितने मनभावन चित्र है। समूची कविता में एक चित्रावली बनती चली जाती है। एक से एक श्रेष्ठ बिम्ब। लोक का गहन स्पंदन देवकीनंदन शर्मा की कविताओं की मूल शक्ति है।

भूमंडलीकरण व बाजारवाद ने जहां पूरी दुनिया को एक कमोडिटी में रूपांतरित कर दिया है। हम बाजार के हाथों की कठपुतली बन गए हैं। जीवन से नैसर्गिक सौंदर्य और स्वतस्फूर्त आनंद की विदाई हो चुकी है। लोग हंसना और हंसाना विस्तृत कर बैठे हैं। हास्य की फ़ूहड़ महफिलें जवान हों, जहां द्विअर्थी संवाद और नग्नता की चाशनी में नौनिहालों, युवाओं और बुजुर्गों को मर्यादा को रौंदकर भौंडा हास्य परोसा जा रहा हो ऐसे संक्रांति बिन्दु पर देवकीनंदन की कविताएं हमें भारतीय लोक संस्कृति से जोड़कर सौंदर्य का सच्चा और निष्कलुष रूप के दर्शन कराती हैं। ये कविताएं हमारी चेतना को परिष्कृत करती हैं और सौंदर्य की अनेकानेक छवियां हमारे सम्मुख खोलती हैं। मच्यौ ऐसो धमाल ऐसी ही उत्कृष्ट कविता है-

थपथपाये फागुन मन के बंद कपाट
गुनगुनाये पवन तराने हजार हठात
चूर हुए मस्ती में ढप औ ढोल
गूंजे अम्बर तक प्रीत के बोल
राधा कान्हा कान्हा राधा हुआ यह कमाल
ब्रज धाम की होली में मच्यौ ऐसो धमाल

होली की बात चले और राधा कृष्ण और ब्रज का जिक्र न हो तो बात आध -अधूरी रहती है। होली की मस्ती जैसा अनूठा आनन्द दुनिया में अन्यत्र कहां सम्भव है। तमाम देश दुनिया के हजारों लोग इस रंगों के त्योहार में निमज्जित होने के लिए ब्रज आते हैं और यहां रससिक्त होकर तमाम दुश्चिंताओं से मुक्त हो जाते हैं।

कविता में संग्रहित 'एक ओर बचपन' अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण हमारा ध्यान आकर्षित कराती है। यह कविता एक ओर सुविधा सम्पन्न लोगों के

बचपन की सुनहरी तस्वीर प्रस्तुत करती है तो वहीं दूसरी ओर विपन्नता और ज़हालत में सिसकते बचपन की बदरंग तस्वीर प्रस्तुत कर हमें सोचने के लिए विवश कर देती है। कवि दोनों स्थितियों को एक दूसरे के सम्मुख रख देता है जिससे की विद्रूप और भी सघन हो उठता है -

एक ओर बचपन है
जो झुग्गी झोपड़ियों में पल रहा है...
कैसा दुलार कैसा प्यार, हर तरफ उपेक्षा दुत्कार
यह बचपन बहुत बहुत रूलाता है
इंसानियत का बदनुमा दाग नजर आता है

महाप्राण निराला ने बीसवीं सदी के चौथे दशक में भिक्षुक कविता में सिसकते बचपन का करूणार्द वर्णन किया था। उस कविता को लिखे लगभग एक सदी होने को आई किंतु जनसामान्य के जीवन में आज भी स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ये कविताएं आपको संवेदनशील बनाकर इन स्थितियों के परिवर्तन के लिए बेचैन करती हैं।

देवकीनन्दन शर्मा की कविताओं में आधुनिक मानव की चिंताएं विन्यस्त हैं जो अपनी परंपराओं से जुड़कर भी भिन्न हैं। जिंदगी बरसी कविता में आषाढ़ के बादल हलधरों के मन की पाती बांच रहे हैं। किसान के लिए आषाढ़ के महीने में बारिश का कितना महत्व है? इसकी बखूबी पहचान कवि को है। जायसी ने पद्मावत के नागमती वियोग वर्णन का आरंभ आषाढ़ मास से करते हुए लिखा था - चढ़ा आषाढ़ गगन घन गाजा, किंतु देवकीनंदन आधुनिक संचेतना के कवि हैं। इसलिए आषाढ़ की वर्षा उनकी चेतना में किसानों की खुशी बनकर आती है। इस कविता में होरी और किसान का संघर्ष याद आता है।

कवि की दृष्टि वैश्विक घटनाक्रम पर बनी रहती है। जब रूस यूक्रेन युद्ध समूची धरा को जंगी जहाज़ों और मिसाइलों से छलनी कर रहा है तो कोई भी संवेदनशील कवि इसे कैसे नजरंदाज कर सकता है। साहित्य के मूल में तो विश्व कल्याण की भावना निहित होती है, उसके लिए भौगोलिक दूरियां या सरहदें बेमानी होती हैं। इस कविता को पढ़ते हुए शमशेर बहादुर सिंह की कविता अन्न का राग मानस पटल पर कौंधती है। युद्ध ने कभी समाधान नहीं दिया, सदैव समूची मानव जाति को शर्मशार किया है। सभ्यताओं का अंत किया है। इस कविता में कवि की वैश्विक नेतृत्व से यही मार्मिक अपील अभिव्यक्त हुई है -

शायद दो -दो विश्वयुद्धों की विभीषिका
भूल चुके हैं हम ....
उठो, दुनिया के अमनपसंद नायकों!
रोको, दुनिया के उदंड सत्ताधीशों को।
यक़ीनन युद्धोन्मादियों को
खोलनी होंगी आंखें
बचानी होगी इंसानी सभ्यता।

संग्रह में संकलित वंदन अभिनंदन कविता में नारी शक्ति के प्रति अभिनंदन का भाव मुखरित हुआ है। प्रणाम कविता में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के संघर्ष और साहित्यिक अवदान को याद किया गया है। आशीष अमृत ढुलकाओ नामक कविता में हिंदी गीत ग़ज़ल के प्राण कुंवर बैचेन का सम्यक स्मरण किया गया है। मातृभाषा कविता में केवल हिंदी का ही वंदन नहीं किया गया अपितु देश में प्रचलित सभी मातृभाषाओं के प्रति सम्मान प्रकट किया गया है।

इस संग्रह की सभी कविताएं अपने समय के साथ सतत संवाद करती हैं। कवि की दृष्टि से कोई भी हलचल ओझल नहीं होती है और न ही वह समस्याओं को देखकर अपनी गर्दन रेगिस्तान में छुपाकर समस्याओं के बंवडर के थमने का इंतजार करता है अपितु एक सजग और संवेदनशील कवि होने का परिचय देता है। इन कविताओं में राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, सांस्कृतिक नीति समेकित रूप में विश्लेषित हुई है। ये कविताएं एक बेहतर समाज का स्वप्न बुनती हैं, जहां समता और न्याय का साम्राज्य हो। ये कविताएं मानवीय मूल्यों की पक्षधर हैं। इस संग्रह की कविताओं का शिल्प बहुत ही सहज और सरल है। सम्प्रेषणीयता इन कविताओं की शक्ति है। कविताओं में तत्सम बहुल शब्दों का प्रयोग है किंतु यह अर्थ में कहीं भी अवरोध उत्पन्न नहीं करते। कविताओं के बिम्ब मन में देर तक ही नहीं दूर तक पीछा करते हैं। इस कविता संग्रह का साहित्य जगत में स्वागत किया जाना चाहिए।

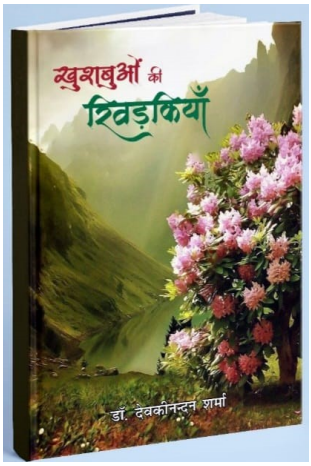

पुस्तक: खुशबुओं की खिड़कियाँ
लेखक: डॉ. देवकीनंदन शर्मा
आईएसबीएन : 978-93-88130-95-0
प्रथम संस्करण: 2023
प्रकाशक: ए आर पब्लिशिंग कंपनी
अजीत विहार, नई दिल्ली

***

संजय शुक्ल
राजेंद्र नगर, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश
मो. 8130438474

पुस्तक समीक्षा

आत्म विश्लेषण के लिए बाध्य करती कृति

पिंजरा अर्थात एक प्रकार का कारागृह, एक किसिम की जेल। पिंजरा लकड़ी का बना हो, लोहे से निर्मित किया गया हो अथवा सोने -चाँदी से गढ़ा गया हो और उसके सींकचे भले ही रत्नजड़ित हों -पिंजरा अंततः पिंजरा ही होता है। मुक्ताकाश में जैसी स्वछंद, उन्मुक्त और ऊँची उड़ान भरी जा सकती है वैसी उड़ान की कल्पना पिंजरे में भला कैसे की जा सकती है। पिंजरा होता है छटपटाने के लिए, तड़पने के लिए, फड़फड़ाने के लिए, घुटने के लिए और अंत में घायल डैनों के साथ घुट-घुट कर मर जाने के लिए।

जलजीवशाला (एक्वेरियम) काँच से बना एक प्रकार का पिंजरा ही है। वो रंगीन, सुनहरी, रुपहली मछलियों की कैदगाह ही है जिसमें विशाल, विराट समुंद्र की अतल गहराइयों में उमंग के साथ तैरने की कला भूल जाती हैं मछलियां। चिड़ियाघर का क्षेत्रफल बहुत व्यापक होता है, तथापि हिरण, शेर, चीते जैसे अन्य जीवों के लिए जो सौ किलोमीटर प्रति घंटे की गति से भी अधिक दौड़ लगा सकते हों - के लिए एक प्रकार की जेल ही तो है। परिंदों के लिए, मछलियों के लिए या फिर जंगली जानवरों के लिए विभिन्न प्रकार की जेलों या पिंजरो की कल्पना और फिर उनकी रचना मनुष्य द्वारा ही की गई। अपने अहंकार और बौद्धिक शक्ति के उन्माद में डूबे मनुष्य में अन्यान्य जीवों को वश में करने की दुष्प्रवृत्ति बढ़ने लगी। जलचर, थलचर, नभचर ही नहीं ऐसे अनेक उदाहरण इतिहास से मिल जाएँगे जहां मनुष्य ने मनुष्य को ही गुलाम बनाकर पिंजरों में उनको जीवनपर्यंत रखा।

पिंजरों को बनाने में मनुष्य इतना लिप्त और पारंगत हुआ कि उसे यह ही पता नहीं चला कि कब और कितने,स्वयम् के द्वारा बनाए गए पिंजरों में वह खुद क़ैद हो गया है। मनुष्य की इस नादानी को बहुत ही विस्तार से, गहनता से, विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक रूप से उजागर करने का कार्य किया है अत्यंत संवेदनशील, सचेत,सजग और मनोवैज्ञानिक दृष्टि बोध से सम्पन्न,समर्थ साहित्यकार डाक्टर ईश्वर सिंह तेवतिया जी ने। डाक्टर साहब की प्रखर दृष्टि ने मनुष्य की संकीर्णता को अनेक प्रकार के पिंजरे में ढ़लते हुए देखा और उनकी सिद्ध लेखनी ने उन्हें एक पुस्तक के रूप में सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया-- " पिंजरे किस्म -किस्म के।"

'पिंजरा धार्मिक संकीर्णता का' में लेखक वर्तमान समय के सबसे संवेदनशील विषय पर बहुत ही सावधानी से, सतर्कता से और संतुलित शब्दों में अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। धर्मोन्माद के पिंजरे में क़ैद समाज किस प्रकार विश्व के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न कर रहा है, उससे क्या-क्या और कैसी-कैसी भूलें हो रही हैं उन सभी का बिंदुवार तरीके से उल्लेख किया गया है। समस्त नकारात्मक परिदृश्यों से घिरे होने के बाद भी, कट्टरपंथी संगठनों की आक्रामकता को नित्यप्रति देखते हुए भी लेखक निराश नहीं हैं। वह उन सम्भावनाओं को भी प्रस्तुत करते हैं जिनसे विश्व में एक शांतिपूर्ण वातावरण बन सके। डाक्टर साहब के शब्दों में, "हम धर्म से जुड़ें,

धार्मिक संकीर्णता से नहीं"। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए डाक्टर साहब ने एक और अति ज्वलंत विषय को पिंजरे के रूप में प्रस्तुत किया है। वह पिंजरा है जातिवाद का। जातिभेद, नस्लभेद किसी भी सभ्य समाज के लिए कलंक के समान हैं। इन पर विस्तृत और गम्भीर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डाक्टर साहब अग्रिम पंक्ति के लोगों से अपेक्षा करते हैं कि उनको आगे आकर पूरी साफगोई के साथ जातिवाद का विरोध करने के लिए सामने आना चाहिए।

पिंजरों की यह श्रृँखला बढ़ती जाती है। लेखक अपने आसपास के समाज की मनःस्थिति, उसके चरित्र, उसके व्यवहार, उसकी चेष्टाओं और उसकी निरन्तर संकीर्ण होती जा रही मानसिकता को अनेक प्रकार के पिंजरों में बंदी पाते हैं। ये पिंजरे हैं नफरत के, पूर्वाग्रह के, अहंकार के, मोह के, महापुरुषों के आदि-आदि।

डाक्टर ईश्वर सिंह तेवतिया जी की यह सद्य प्रकाशित पुस्तक कईं अर्थों में अनूठी एवं अद्वितीय है। शीर्षक सम्मोहक है। विषय निराला और प्रत्येक ललित आलेख की भाषा सरल, सरस एवं वेगमयी है। प्रत्येक लेख पाठक को झकझोरने का कार्य करता है, उसकी चेतना को जागृत करने का कार्य करता है साथ ही आत्मविश्लेषण के लिए बाध्य भी करता है। इस श्रेष्ठ कृति के लिए लेखक को कोटिशः बधाई।

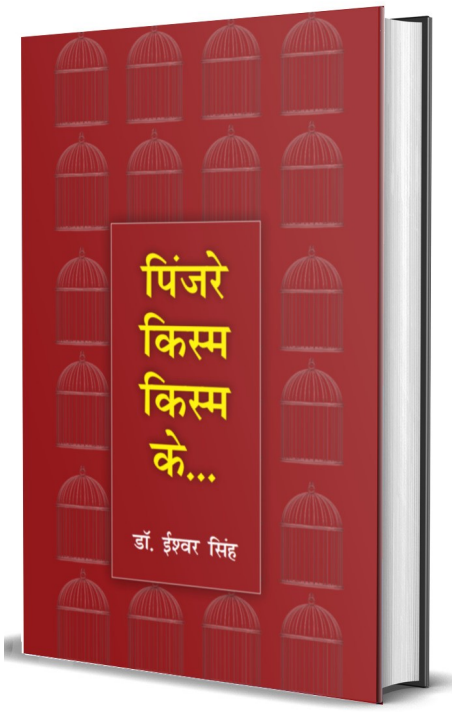

पुस्तक: पिंजरे किस्म-किस्म के
लेखक : डॉ. ईश्वर सिंह
आईएसबीएन : 978-93-94165-20-5
प्रथम संस्करण: 2022
प्रकाशक: ए आर पब्लिशिंक कंपनी
अजीत विहार, नई दिल्ली

****

'शुभोदय' ई-पत्रिका में रचना प्रस्तुत करने के लिए सामान्य नियम

भाषा एवं लिपि: 'शुभोदय' हिंदी भाषा की ई-पत्रिका है। अतः सभी रचनाएं हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में उचित व्याकरण और वर्तनी के साथ लिखी जानी अपेक्षित हैं।

प्रकाशन अंक: शुभोदय के वर्ष में दो अंक 'वसंत अंक' और 'शरद अंक' प्रकाशित किए जाते हैं। अतः वसंत अंक के लिए 28 फरवरी तथा शरद अंक के लिए 31 अगस्त तक टंकित रचनाएं शुभोदय की ईमेल: shubhodayash-ubham@gmail.com पर प्राप्त हो जानी चाहिए।

विषय: रचना किसी भी विवादास्पद विषय पर या किसी समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली या राजनीतिक, धार्मिक, जातीय अथवा क्षेत्रीय विद्वेष पैदा करने वाली नहीं होनी चाहिए।

रचनाओं के प्रकार: शुभोदय के लिए लेख, कहानी, लघु कथा, संस्मरण, कविता, गीत, ग़ज़ल, पुस्तक-समीक्षा और साहित्य जगत की महत्वपूर्ण हलचल आदि से सम्बन्धित मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं भेजी जा सकती हैं।

रचनाओं का आकार: 'शुभोदय' ई-पत्रिका के लिए कविता, गीत, गजल, लघु-कथा के लिए अधिकतम 300 शब्द तथा लेख, कहानी, संस्मरण के लिए 1000 शब्द सीमा निर्धारित है।

मौलिकता: शुभोदय में केवल मौलिक रचनाएं ही स्वीकार की जाती हैं। यदि किसी अन्य रचनाकार की कृति से कोई उद्धरण लिया गया है तो उसका उल्लेख कोष्ठक में या फुट नोट में किया जाना चाहिए।

नैतिक मानक: लेखन में नैतिक मानकों का पालन अनिवार्य है। अभद्र भाषा या असामाजिक सामग्री अस्वीकार्य है।

स्वरूपण: स्पष्ट शीर्षकों, उपशीर्षकों और अनुच्छेदों के साथ लेख को सही ढंग से प्रारूपित किया जाना चाहिए। रचना यूनिकोड़ में टंकित होनी चाहिएं। रचनाओं की वर्ड और पीडीएफ दोनों ही फाइल भेजी जानी चाहिए।

चित्र: यदि लेख में चित्र हैं, तो लेखक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे प्रासंगिक हैं, उच्च गुणवत्ता वाले हैं, और उन पर उपयुक्त शीर्षक हैं।

कॉपीराइट: लेखकों को अपने लेखों के कॉपीराइट 'शुभोदय' ई-पत्रिका में स्थानांतरित करने के लिए सहमत होना चाहिए, जो ई-पत्रिका को प्रिंट और डिजिटल सहित किसी भी प्रारूप में लेख प्रकाशित करने की अनुमति देता है।

प्रस्तुत करने की समय सीमा: रचनाकार 'शुभोदय' ई-पत्रिका द्वारा निर्धारित समय सीमा में अपनी रचनाएं प्रस्तुत करें। निर्धारित अवधि के बाद प्राप्त रचनाएं स्वीकार नहीं की जाएंगी।

संपादन: 'शुभोदय' ई-पत्रिका संपादक मंडल लेखक के मूल अर्थ और मंशा को बनाए रखते हुए स्पष्टता, लंबाई और शैली के लिए लेखों को संपादित करने का अधिकार सुरक्षित रखता है।

स्वीकृति: 'शुभोदय' ई-पत्रिका संपादक मंडल लेखकों को उनके लेखों की स्वीकृति या अस्वीकृति के बारे में सूचित करेगा। उचित संशोधन के बाद अस्वीकृत लेख पुनः जमा किए जा सकते हैं।

भुगतान: लेखकों को उनके द्वारा प्रस्तुत रचनाओं के लिए कोई मौद्रिक मानदेय नहीं दिया जा सकेगा।

आवश्यक जानकारी: रचना के साथ रचनाकार का नवीनतम फोटो (जेपीजी या जेपीईजी में), नाम, पता एवं मोबाइल नंबर होना चाहिए।

अस्वीकरण: किसी रचना में व्यक्त विचार और उनकी मौलिकता का पूरा दायित्व रचनाकार का होगा। पत्रिका में प्रकाशित होने पर भी उसकी जबाबदेही रचनाकार की होगी, संपादक मंडल की नहीं। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों को शुभोदय के विचार नहीं माना जाएगा।

शुभोदय

शुभोदय